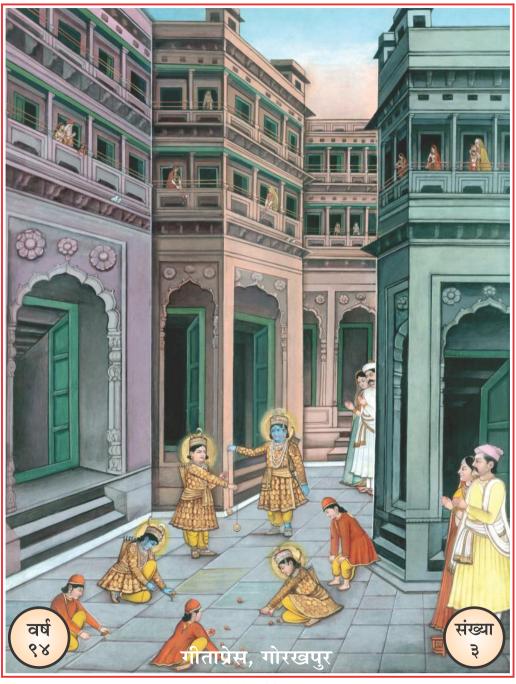
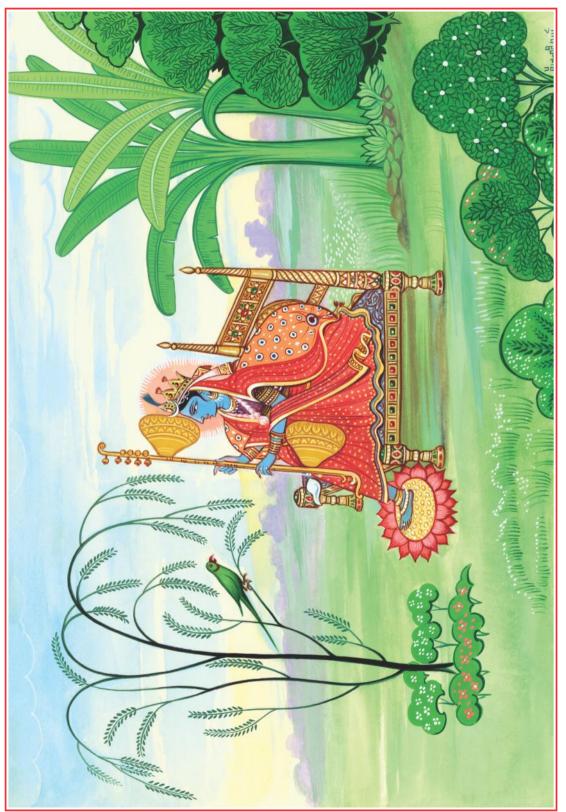
मूल्य १० रुपये

कल्याणा



अवधकी वीथियोंमें रामलला





🕉 पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा। दृष्टान्तदृष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाश्यमाशु भुवनं सितरश्मिनेव॥

वर्ष ९४ गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, मार्च २०२० ई०

(संख्या) इ

पूर्ण संख्या ११२०

श्रीमातंगी-ध्यान

ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं न्यस्तैकाङ्घ्रिं सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम्। कह्वाराबद्धमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्तवस्त्रां मातङ्गीं शङ्खपात्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्धासिभालाम्॥

. (दुर्गासप्तशती अ०७)

मैं मातंगीदेवीका ध्यान करता हूँ। वे रत्नमय सिंहासनपर बैठकर पढ़ते हुए तोतेका मधुर शब्द सुन रही हैं। उनके शरीरका वर्ण श्याम है। वे अपना एक पैर कमलपर रखे हुए हैं और मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण करती हैं तथा कह्लार पुष्पोंकी माला धारण किये वीणा बजाती हैं। उनके अंगमें कसी हुई चोली शोभा पा रही है। वे लाल रंगकी साड़ी पहने हाथमें शंखमय पात्र लिये हुए हैं। उनके वदनपर मधुका हलका-हलका प्रभाव जान पड़ता है और ललाटमें बेंदी शोभा दे रही है।

राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।। (संस्करण २,००,०००) कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, मार्च २०२० ई० विषय-सूची पृष्ठ-संख्या विषय पुष्ठ-संख्या विषय १५- दृढ़ इच्छाशक्ति [बोध-कथा] (श्रीरामकिशोरजी) २७ १६ - असंग रहो और भगवानको अपना मानो ३ - परब्रह्म परमात्माकी बाल-क्रीडा [आवरणचित्र-परिचय] ६ (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) २८ ४- आत्मनिवेदन १७- वर्तमान युगमें ज्योतिषका महत्त्व (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)७ (पं० श्रीसंजय शिवशंकरजी दवे, ज्योतिषाचार्य) २९ ५- नाम-स्मरण १८- विश्नोई सम्प्रदायके जाम्भाणी साहित्यमें प्राप्त प्रेरक (समर्थ सद्गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज श्रीगोंदवलेकर) ९ बोधकथाएँ (श्रीविनोद जम्भदासजी कडवासरा)...... ३२ ६- 'जोडीं कितनी चीजें!' [कविता] (श्रीशरदजी अग्रवाल) १० १९- आचरण-शुद्धिमें बोधकथाओंकी भूमिका (श्रीस्रेन्द्रजी माहेश्वरी)......३५ ७- भक्तके लक्षण (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ... ११ २०- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य ८- उत्तम पति प्राप्त करनेका साधनस्वरूप व्रत१४ श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)............३७ ९- दुर्गा-पाठ [शतसहस्रायुतलक्ष चण्डीप्रयोग] २१- जीव-शिक्षा-सिद्धान्त [स्वामी श्रीहरिदासकृत अष्टादश पद] .३८ (पं० श्रीहनुमानजी शर्मा)१५ २२– प्यासी गौको जल पीनेसे रोकनेके कारण पुत्रहीनता ४१ १०- भवितव्यता [बोध-कथा] (श्रीकन्हैयासिंहजी 'बिशेन') १८ २३ - उदासीनाचार्य श्रीश्रीचन्द्रजी महाराज [संत-चरित] ११- अहंकार कैसे मिटे? [साधकोंके प्रति] (स्वामी श्रीसर्वदानन्दजी महाराज, दर्शनरत्न)......४२ (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) १९ २४- व्रतोत्सव-पर्व [वैशाखमासके व्रत-पर्व]४३ १२- चार मित्र [बोध-कथा] (डॉ० श्रीमती पुष्पारानीजी गर्ग) २२ २५- साधनोपयोगी पत्र.....४४ १३- 'लला फिर आइयो खेलन होरी' (श्रीअर्जुनलालजी बन्सल) .. २३ २६ - कृपानुभृति४६ १४- परिवारका स्वरूप (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, २७- पढ़ो, समझो और करो.....४७ अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)२५ २८- मनन करने योग्य.....५० चित्र-सूची २- भगवती मातंगी देवी मुख-पृष्ठ ४- अरिष्टासुरका उद्धार (जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय।। जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ एकवर्षीय शुल्क पंचवर्षीय शुल्क विराट् जय जगत्पते। गौरीपति रमापते ॥ जय ₹ २५० ₹ १२५० विदेशमें Air Mail) वार्षिक US\$ 50 (₹ 3,000) (Us Cheque Collection पंचवर्षीय US\$ 250 (₹ 15,000) Charges 6\$ Extra संस्थापक - ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक - राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक-डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित website: gitapress.org e-mail: kalyan@gitapress.org C 09235400242 / 244 सदस्यता-शुल्क — व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें। Online सदस्यता हेत् gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें। अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा book.gitapress.org पर नि:शुल्क पहें।

संख्या ३] कल्याण *याद रखो*—जैसे कृष्णपक्षके बाद शुक्लपक्ष याद रखों — जो मनुष्य तड़कीले, भड़कीले और आता है, रात्रिके बाद दिन आता है, आँधीका अँधेरा खर्चीले जीवनमें गौरव मानता है और ऐसे जीवनको कटकर फिर उजाला होता है, वैसे ही दु:खका समय आवश्यक तथा सुखका कारण समझता है, वह वस्तुत: समाप्त होकर फिर सुखका समय आयेगा। निराशाकी बेसमझ है और उसे कभी सुख नहीं मिल सकता। रात्रि बीतकर फिर सुन्दर आशाका प्रभात होगा। किसी याद रखों — जो मनुष्य अपरिग्रही, त्यागी पुरुषोंके भी स्थितिमें घबराना नहीं चाहिये। जीवनको आदर्श मानकर अपनी आवश्यकताओं और अभावोंको घटाकर सादा-सीधा बहुत कम खर्चका याद रखो-वस्तुत: दु:ख तुम्हारे मनकी कामना और आसक्तिको लेकर ही होता है, वैसे दु:ख कोई वस्तु जीवन बना लेता है, वह सुखी रहता है। परन्तु जो मनुष्य नहीं है, इसी प्रकार सांसारिक वस्तुओंसे प्राप्त होनेवाला संग्रही तथा भोगी मनुष्योंके जीवनको आदर्श मानकर सुख भी मोहजनित ही है। सांसारिक वस्तुओंसे सुखकी अपनी आवश्यकताओं और अभावोंको बेहद बढाकर आशा है, इसीसे बार-बार दु:ख आता है; क्योंकि उनमें भड़कीला और खर्चीला जीवन बना लेता है। उस सुख यथार्थमें है ही नहीं। प्रमादमें पड़े हुए मनुष्योंको बार-बार नये-नये दु:खोंका याद रखो — सुखकी प्राप्ति कामनाकी पूर्तिसे नहीं शिकार होना पड़ता ही है। होती; क्योंकि नयी-नयी कामनाएँ उत्पन्न होती ही रहती याद रखो — सच्चे सन्तोषके दर्शन होते हैं भगवान्पर हैं। सर्वोत्तम सुख तो सन्तोषमें ही मिलता है। और उनके मंगलमय विधानपर अडिग विश्वास करनेसे। याद रखो-जिसकी आवश्यकताएँ कभी पूरी जो मनुष्य भगवान्की मंगलमयी इच्छापर अपनेको छोड़ नहीं होतीं, उसकी गरीबी भी कभी नहीं मिटती, चाहे देता है और यथासाध्य भगवदाज्ञानुसार व्यवहार करता उसकी बाहरी स्थिति कैसी भी क्यों न हो जाय। और हुआ प्रत्येक स्थितिमें प्रसन्न रहता है। वह सदा ही अपनेको जबतक गरीबी है, तबतक दु:ख रहेगा ही। भगवान्के कृपापूर्ण कर-कमलकी छायामें पाता है। भगवान्की याद रखो—नये-नये विशाल भोगोंको प्राप्त कृपासे उसके मनमें दु:खलेशका प्रवेश नहीं हो पाता। करने तथा भोगनेकी एवं विषयोंके संग्रह-परिग्रहकी याद रखों - जो भगवान्की मंगलमयी कृपाका इच्छा ही मनकी गरीबी है। यह गरीबी अज्ञानवश आश्रय ले लेता है, भगवान्की कृपाशक्ति उसको सदा ही परम सुखकी अनुभूति कराती रहती है। वस्तुत: बुलायी हुई है, सन्तोषके द्वारा इसे निकालकर और फिर न बुलाकर मनुष्य सुखी हो सकता है। सांसारिक वस्तु और स्थितिमें सुख है ही नहीं, वह तो याद रखो—भोग-पदार्थोंका कहीं अन्त नहीं है; भ्रान्ति है और है आनेवाली विपरीत वस्तू एवं स्थितिकी क्योंकि प्रकृतिका विस्तार अनन्त है। इसी प्रकार कामनाका दूसरी दिशा। इसे दु:खकी पूर्वभूमिका भी कह सकते हैं। भी अन्त नहीं है; क्योंकि ज्यों-ज्यों भोग-पदार्थोंकी याद रखो-भगवत्कृपाका पूर्ण आश्रय लेनेपर प्राप्ति होती है, त्यों-त्यों ईंधन-घी डालनेपर अग्निके सारी प्रतिकूलताएँ सदाके लिये अनुकूलतामें परिणत हो बढनेकी भाँति कामनाएँ भी बढती रहती हैं। जाती हैं, इसलिये दु:ख भी सदाके लिये मिट जाते हैं— याद रखो-जिसको अपनी स्थितिमें सन्तोष है, फिर सबमें सब समय अनुकूलता और सुख ही प्राप्त वह दूसरोंके ऐश्वर्यकी उन्नित देखकर जलता नहीं, न होता है, वस्तुका स्वरूप चाहे कैसा भी रहे-कभी वैसा बननेकी आकांक्षा ही करता है। इसलिये वह गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥ सदा सुखी रहता है। 'शिव'

परब्रह्म परमात्माकी बाल-क्रीड़ा



करती हैं, जो मन तथा वाणीसे परे है, सम्पूर्ण विश्वका जो मूल कारण है, जो सर्वेश्वर और सर्वाधार है, जिसके विषयमें

उसका कोई स्वामी भी नहीं।' वही निर्गुण, निराकार, अनादि, अनन्त, अव्यक्त, सर्वशक्तिमान् परम ब्रह्म प्रेमके वशमें होकर नन्हा-सा

बालक बन जाता है। अपनेको समर्पित कर देता है वह

निखिलब्रह्माण्डनायक।

महाराज दशरथने पुत्रेष्टि यज्ञ किया और अग्निदेवने उन्हें प्रकट होकर चरु (पायस) दिया, यह सब तो एक निमित्त है। यह भी लीलामयकी वैसी ही लीला है, जैसे दूसरे नर-नाट्य उन्होंने किये। महाराज दशरथ तो साकेतके नित्य पिता हैं और माता कौसल्या नित्य माता हैं। परात्पर

परमब्रह्म साकेतविहारी श्रीराम सदा-सर्वदा श्रीदशरथनन्दन एवं कौसल्यानन्दवर्धन ही हैं। अत: पृथ्वीपर उनके प्रकट होनेके

जितने कारण कहे जाते हैं—सब लीलामात्र हैं। यहाँ उनकी बालक्रीडाकी एक मनोरम झाँकी प्रस्तुत की जा रही है— श्रीराम कुछ बड़े हो गये हैं। अब नगरके महाभाग बालक सबेरे ही राजभवनके द्वारपर आ जाते हैं। वे प्रतीक्षा करते हैं अपने प्राणसर्वस्व सखाके आगमनकी। भीतरसे

खेलन चिलये आनंदकंद।

सखा प्रिय नृप द्वार ठाढ़े बिपुल बालक बृंद॥ युग-युगके, जन्म-जन्मके साधनोंका जब परिपाक

होता है, तब कहीं बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्र अपने निष्पाप निर्मल एकाग्र चित्तमें उस सौन्दर्यसिन्धुकी एक क्षणके लिये एक झलक पाते हैं और आज यह सकल कल्याणगुण-गणैकधाम परमानन्दचिन्मूर्ति अयोध्याकी वीथियोंमें बालकोंके साथ हँसता, बोलता, किलकता

अवधवासियोंको सुख देता इधर-से-उधर दौड़ रहा है। झाँकी द्रष्टव्य है-

भगवान् राम हाथोंमें सुन्दर-सुन्दर छोटे-छोटे धनुष-बाण लिये, कमरमें तरकस कसे तथा पीताम्बर पहने और पैरोंमें सुन्दर जूतियाँ धारण किये हैं। उनकी पैंजनी और

किंकिणीकी ध्वनि सुनकर मन आनन्दित होता है। वे भुजाओं में

सुन्दर पहुँची तथा बिजायठ धारण किये हैं, वक्ष:स्थलपर

लघु-लघु

कसे.

रहै

हृदय

कटि

धनु-सर

नित

पदिक

कबि

पाँय पैंजनी-किंकिनि-धुनि,

कर,

जियरे।

सियरे ॥

वेदवाणी कहती है—'न तस्य कश्चिज्जनिता न चाधिप:।' पदिक और हार सुशोभित हैं तथा उनके कानोंमें कुण्डल और अर्थात् 'उसे कोई उत्पन्न करनेवाला नहीं और माथेपर तिलक सुशोभित है। सिरपर लाल टोपी है, नेत्रकमल अति विशाल हैं तथा मुख अति सुन्दर है। अनुज और अन्य बालकोंसहित सर्वांग-सुन्दर भगवान् रामको नर-नारी इस

> प्रकार एकटक देखते रह जाते हैं, जैसे हरिण दीपकको। इस प्रकार अवधकी गलियोंमें गोली, भँवरा, लट्टू और डोरीसे खेलती हुई प्रभुकी उस मधुर मूर्तिको देखकर तुलसीदासजी

कहते हैं कि यह मूर्ति मेरे हृदयमें निवास करे— ललित-ललित

ललित पनिही सुनि सुख लहै मनु,

सुंदर

कुंडल-तिलक-छबि गड़ी सिरसि टिपारो लाल, नीरज-नयन बिसाल, ठाढे

अंगद चारु,

तरकसी

बदन,

सुभग सकल अंग, अनुज बालक संग,

नर-नारि रहैं ज्यों कुरंग

खेलत अवध-खोरि, गोली भौंरा चक डोरि।

सुरतरु

दियरे।

भर्तालाक्षणंद्रीतअन्भिष्ठेक्**ञ्**तरे**हें**rver https://dsc.gg/dharma मूर्ता/MADम्ब्रुःWITबक्केLOभुक्तिकोशे Avi**हक्केऽ**h/Sha

संख्या ३] आत्मनिवेदन आत्मनिवेदन (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) आत्मनिवेदनके सम्बन्धमें सूक्ष्म विचार करना आदिमें भी दिये जा सकते थे। राजाओंमें कहीं-कहीं तो चाहिये। इसमें 'आत्म' शब्द आत्माके सहित तीनों यह प्रथा अब भी है। आत्मसमर्पणका दर्जा इन दास-शरीरोंका वाचक है और 'निवेदन'का अर्थ अर्पण है। दासियोंसे भी ऊँचा है। जैसे दो सेनाएँ लड़ रही हैं, जिन वस्तुओंपर हमने अपना अधिकार जमा रखा है, उनमेंसे एक राजाकी सेना परास्त हो गयी, वह राजा हार गया तो वह दूसरेको आत्मसमर्पण कर देता है; कहता उनको उठाकर भगवान्के अर्पण कर देना आत्मनिवेदन है। यह शरणागतिका एक प्रधान अंग है अथवा इसे है कि चाहे मारो, चाहे छोड़ो या राज्य लौटा दो, तुम्हें भक्तिका भी एक प्रधान अंग कह सकते हैं। शरणागतिके अधिकार है। परंतु इस आत्मसमर्पण करनेवालेको यदि चार भेद हैं। शरणागतिका पहला अंग है-भगवान्के विपक्षी राजा मारे तो उसको दु:ख भी हो सकता है; नाम या स्वरूपको पकड़ना। दूसरा अंग है—भगवान्के क्योंकि उसने तो लाचार होकर शरण ली है। परंतु जो अधीन हो जाना अर्थात् उनके अनुकूल बन जाना; वे जिस पुरुष श्रद्धा-भक्ति और प्रेमसे आत्मसमर्पण करता है, प्रकार चलायें उसी प्रकार चलना। तीसरा अंग है— उसको तो मारने-काटनेपर भी आनन्द ही होता है; भगवान् जो कुछ भी विधान करें, उसीमें प्रसन्न रहना और दास-दासियोंको भी मारनेपर दु:ख होता है; क्योंकि चौथा अंग है-भगवत्परायण हो जाना, उन्हींकी गोदमें उनका आत्मसमर्पण श्रद्धा-भक्तिरहित है। जो प्रेम, भक्ति जाकर बैठ जाना और अपने-आपको सर्वथा भगवान्के और श्रद्धासे आत्मसमर्पण करता है, उसका कुछ भी करो, उसको दु:ख नहीं होता। जैसे राजा बलिका अर्पण कर देना। जब मैं स्वयं ही भगवान्के अर्पण हो गया, तो मेरी सारी चीजें भी उनके अर्पण हो गयीं। आत्मसमर्पण प्रेम और श्रद्धापूर्वक था, भय या लाचारीसे आत्मसमर्पण नवधाभक्तिका अन्तिम अंग है। यदि नहीं था। उसको गुरु शुक्रने यह बता दिया कि यह साधारण ब्राह्मण नहीं है, तुम्हारा सब कुछ ले लेगा, तो कोई पूछे कि सेव्य-सेवक-भाव और आत्मनिवेदनमें क्या अन्तर है। तो कहा जा सकता है कि यों तो कोई फरक भी उसने जान-बूझकर प्रेम और भक्तिसे अपना सर्वस्व भगवान्के अर्पण कर दिया और कहा कि जब स्वयं नहीं है; क्योंकि आगे चलकर तो दास्यभाववाला भी भगवान् इस प्रकार मेरा सर्वस्व लेते हैं तो मेरे लिये इससे आत्मसमर्पण करेगा और जिसने आत्मनिवेदन कर दिया वह दास ही है: परंतु उदाहरणसे इनका अन्तर इस प्रकार अधिक आनन्द और है ही क्या? जो इस प्रकार समझ सकते हैं। एक दुकानपर दो मुनीम काम करते हैं, भगवानुको आत्मसमर्पण करता है, उसके मन, बुद्धि और उसका जो कुछ लेन-देन, माल-खजाना है; उन सबको वे शरीर आदि सब भगवान्के ही हो जाते हैं। उसका मालिकका ही मानते हैं। परंतु उनमेंसे एक तो शरीर-उनपर कोई अधिकार नहीं रह जाता। जड़ वस्तुओंमें निर्वाहके लिये अन्न-वस्त्रमात्र ही लेता है और दूसरा इसका उदाहरण कठपुतली हो सकती है। कठपुतलीने वेतन भी लेता है। इनमें पिछलेका सकाम और पहलेका नटको आत्मसमर्पण कर रखा है। नट उसका चाहे सो निष्कामभाव है। निष्कामभाववालेका दर्जा ऊँचा है। करे! वह उसे कपड़ा पहनाये, युद्ध कराये या और जो दोनोंका ही सेव्य-सेवकभाव है; किंतु इनमें पहले दर्जेवाले कुछ करे, वह अपनी तरफसे कुछ नहीं करती। परंतु भक्तने तो आत्मसमर्पण किया, दूसरेने नहीं। कठपुतलीमें चेतना-शक्ति नहीं है, वह जड़ है। जो पुरुष प्राचीनकालमें एक और प्रकारके भी दास हुआ चेतनाशक्ति रहते हुए अपने-आपको उस कठपुतलीके करते थे। वे दास ही जन्मते और दास ही मरते थे। उन्हें समान भगवान्के अर्पण कर देता है, उसमें शरणागतिके वेतन आदि कुछ भी नहीं मिलता था और वे दहेज और अंग भी आ जाते हैं। शरणागतिके लिये इतना

भाग ९४ देना चाहे तब भी कुछ न लेना और भी उत्तम है—यह उपयुक्त दूसरा उदाहरण स्मरण नहीं आता। यदि बाजीगरके बन्दरका उदाहरण दें तो वह तो मालिकके बलिके आत्मसमर्पणसे भी ऊँची बात है। वरदान देनेकी आज्ञानुसार चलनेका होगा। यद्यपि यह भी शरणागतिका बात कहनेपर वह सच्चा आत्मसमर्पण करनेवाला भक्त यह कहता है—'हे प्रभु! किसको वरदान देते हैं, मैं तो एक अंग है, परंतु प्रधान बात तो अपने-आपको अर्पण कर देना ही है। जैसे हमलोग एक गाय किसी ब्राह्मणको आपकी ही चीज हूँ। कुछ दे-लेकर मुझे अलग करते

अर्पण कर दें तो फिर उस गायपर उस ब्राह्मणका अधिकार हो जाता है, इसी प्रकार भगवान्को अपने-आपको अर्पण कर देनेसे अपना अधिकार नहीं रह जाता

है। यदि बारीकीसे विचार किया जाय तो पहलेसे ही चीजें परमात्माकी ही हैं, पर हमने उनपर अपना अधिकार जमा रखा है, वह उठा लिया जाय। जो इस प्रकार समझ जाता है, उसको लोकदुष्टिमें दीखनेवाले कैसे ही सुख-दु:ख आकर प्राप्त हों, भगवान् उसका जो चाहे सो करें, उसको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता। इतना ही नहीं, वह आनन्दमग्न हो जाता है। उसको मालिकके सुखसे ही सुख होता है और मालिक कभी दुखी नहीं होते, इसलिये वह भी सदा सुखी रहता है। फिर उसके द्वारा जो नये कर्म होते हैं, वे मालिकके अनुकूल उन्हींके आज्ञानुसार होते हैं; क्योंकि उसके मन, बुद्धि और शरीर प्रभुके अर्पण हो चुके हैं। सारी वस्तुएँ मालिककी हैं, उनपर वह अपनी आज्ञा नहीं चलाता।

पूछनेपर अपनी इच्छा बता देना भी दोष नहीं है। स्वामी

भक्तिपूर्वक आत्मसमर्पण करनेके कारण वह भगवान्के शरण हो जाता है और फिर परमात्माको कभी नहीं भूलता, निरन्तर उन्हींका चिन्तन करता रहता है। शरणापन्न भक्त परमात्माको प्राप्त हो जाता है। वह चाहे उस महाप्रभुसे अलग रहकर चिन्तन करे, चाहे

इच्छा है—वे पुत्रको यों ही बिना कुछ दिये घरके बाहर कर दें, सौ-दो सौ रुपये देकर कर दें अथवा सारी सम्पत्ति दे दें। पिता देख लेते हैं कि पुत्रकी कुछ इच्छा है तभी अलग करते हैं, नहीं तो क्यों करें। सो हे प्रभु! आप यदि वरदान देनेकी बात कहते हैं तो अवश्य मेरे मनमें अलग रहनेका भाव होगा, नहीं तो आप इस प्रकार

उसमें सम्मिलित होकर। चाहे तद्रूप होकर रहे, चाहे भिन्न सत्तासे रहे। परंतु इस विषयमें उसका कोई संकल्प नहीं होता, उसका मालिक जो चाहे, सो कराये। वह तो अपना सारा स्वत्व उसीको सौंप देता है। शरणागत भक्तकी अपनी तो कोई इच्छा ही नहीं होनी चाहिये। यदि उसमें कोई इच्छा हो जाती है तो उसके आत्मसमर्पणमें कसर है। फिर भी यह कोई बहुत बड़ा दोष नहीं है; क्योंकि बलिने भी तो पातालमें रहना माँगा था। वह

अपनी ओरसे तो कुछ नहीं कहता, परंतु स्वामीके

कैसे कहते ? नाथ! अवश्य मेरी कोई नालायकी हुई है, में आपसे क्षमा माँगता हूँ। जो कुछ है सो तो आपका ही है। वरदान लेकर अलग कहाँ रखूँ?' इस प्रकारका आत्मसमर्पण संख्यभाव और दास्यभाववाले भी कर सकते हैं। अत: आत्मसमर्पण भक्तिका एक पृथक् अंग है। सख्य और दास्यभाववाले ऐसा कर भी सकते हैं और नहीं भी करें तो कोई आपत्ति

हैं क्या? यदि यही इच्छा है तो ऐसा कर दीजिये,

आपकी ही इच्छापर तो सबकुछ निर्भर है। पिताकी

नहीं। यदि कहा जाय कि मित्रता तभी पूरी होगी, जब आत्मसमर्पण कर दिया जायगा; सो ठीक है, परंतु मित्र तो इसके बिना भी हो सकता है। विभीषणके आत्मसमर्पणमें इतना महत्त्व नहीं प्रतीत होता। श्रीकृष्णको सखाभावसे आत्मसमर्पण तो गोपियोंने ही किया था। वे अपने ऊपर अपना कोई अधिकार नहीं समझती थीं। एकमात्र

श्रीकृष्णका ही अधिकार मानती थीं। एक पुरुषमें नवधा भक्तिके सारे भेद भी रह सकते हैं और दो-चार अंग भी रह सकते हैं। भजन-ध्यान, सेवा-नमस्कार करते हुए आत्मसमर्पण नहीं भी हो सकता है। हाँ, और सब

भक्तियाँ आ जानेपर भी यदि आत्मसमर्पण नहीं होता तो इतनी कमी ही है। जिसमें आत्मसमर्पण नहीं है, वह भी

भक्त तो है और कहलाता भी भक्त ही है, परंतु आत्मसमर्पण कर देनेवाले भक्तकी तो महिमा ही अलग है। इसलिये नवधा भक्तिमें इस अंगको अन्तिम बतलाया

गया है। यही सबसे ऊँचा भाव है।

संख्या ३] नाम-स्मरण नाम-स्मरण (समर्थ सद्गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज श्रीगोंदवलेकर) नित्यनियम करनेका अर्थ होते हैं। बड़े-बड़े साधकोंकी भी कीर्ति-लालसाके नित्यनियम करनेका अर्थ है निरन्तर नित्यमें रहना। कारण अधोगित होती है। उसी प्रकार धन और हम मुलत: स्वयं नित्य हैं, फिर भी अनित्यमें रहते हैं। कामवासनाका संयम न रखनेके कारण साधकोंका भी परमात्मा नित्य है, उसे भूलकर, विषय जो अनित्य है, परमात्माके पास पहुँचते-पहुँचते पतन होने लगता है। उसमें व्यग्र हैं, अत: हमें परमात्माका विस्मरण होता है। विश्वके ये सारे बन्धन हमें बन्धनमें डालते हैं। जिसके कारण उसका स्मरण होगा, उसीको नित्यनियम भगवानुका पाश ही असली पाश है; वही पाश, वही कहते हैं। हमें हमेशा नित्यनियममें रहना चाहिये, किन्तु बन्धन हमें सभी बन्धनोंसे मुक्त करता है और शाश्वत वैसा आचरण नहीं होता। इसलिये प्रतिदिन कुछ समयके सुखका लाभ करा देता है। जगमें प्राप्त होनेवाले मान-सम्मानसे कभी मोहित लिये उसका स्मरण होनेके लिये पठन करना चाहिये, जो पठन किया होगा उसका चिन्तन करना चाहिये, जिससे नहीं होना चाहिये। धन और कामवासनाकी अपेक्षा हमें उसकी आदत होगी। जो अखण्ड नामस्मरण करता कीर्ति देहबुद्धिको अधिक मोहित करती है, वहाँ हमें बहुत सावधान रहना चाहिये। जहाँ मान-सम्मान, कीर्ति है, वह नित्यनियममें ही रहता है। यदि सच्चे अर्थसे किसीने नित्यनियम किया है तो ब्रह्मानन्द महाराज मिलना सम्भव है, वहाँ जाना टाल देना चाहिये। यदि (ब्रह्मचैतन्य महाराजके सर्वश्रेष्ठ शिष्य)-ने ही। हमें उसे टालना सम्भव नहीं लगता हो तो 'भगवानुका दान सोचना चाहिये कि हम नित्यनियममें कैसे रह पायेंगे। है' ऐसा मानकर उसको स्वीकार करना चाहिये। जो इसके लिए गुरु-आज्ञा ही प्रमाण है। वही सच्चा साधन वास्तवमें बड़ा होता है या श्रेष्ठ होता है, वह सम्मानकी है। गुरु-आज्ञा ही नित्यनियम है। हमें उसकी शरणमें कभी अपेक्षा नहीं करता और वह यदि सम्मानित किया जाना चाहिये। प्रतिदिन थोड़ा पठन, तदनन्तर मनन, गया तो उसकी उसे कभी महत्ता नहीं लगती। हमें स्वयं मननके पश्चात् आचरण और अन्तमें गुरुकी शरणमें यह परखकर देखना चाहिये कि क्या हमें मान-सम्मान जाना, यही साधकका साधनक्रम है और यही उसका प्रिय लगता है? उससे हमें ज्ञात होगा कि हम स्वयं नित्यनियम भी है। कितने श्रेष्ठ हैं? आते-जाते भगवान्को प्रणाम करे, राम-राम कहे। एक बार भगवानुके प्रति रुचि निर्माण आयु ज्यों-ज्यों बढ़ती है, त्यों-त्यों साधककी परमात्मासे मिलनेकी उत्कंठा बढनी चाहिये। केवल हो गयी तो वह छूटेगी नहीं। निरन्तर सन्तोषका मार्ग नित्यनियम है, इसलिये विवश होकर नामस्मरण नहीं उसकी माता धन्य है, जिसे लगातार रामसेवा करना चाहिये। साधकको हर बात दिलसे करनी चाहिये। यह ध्यानमें रखा जाय कि शंकित मनसे की करनेका अवसर मिला। स्वार्थरहित रामसेवा ही जीवनमें हुई साधनामें अपवित्रता आ जाती है। परमार्थमें श्रद्धा सबसे बडा लाभ है। मुखसे नामस्मरण, शरीरसे ही मुख्य पूँजी है। ऐसी श्रद्धा हो कि साधनामें भगवत्-सेवा, चित्तमें भगवान्का ध्यान, मनकी समर्पित सन्तोष ही सर्वस्व है। जैसे थर्मामीटरमें हम बुखार भावना—ये ही भगवत्-सेवा के साधन हैं, इसके कितना है, यह देख पाते हैं, वैसे साधना करते समय अलावा अन्य कोई साधन नहीं है। जो-जो दिखायी हमें सन्तोष कितना मिलता है, यह भी देखना देता है, वह नाशवान् है। यह तत्त्व समझकर सज्जन लोग जीवन व्यतीत करते हैं। सामान्य जनताको भी चाहिये। साधकको विश्वमें कितने दोष हैं, यह नहीं देखना चाहिये; क्योंकि उन दोषोंके बीज हममें ही वैसा ही जीवन व्यतीत करना है। सन्तानको सँभालकर रखना चाहिये। गृहस्थीमें उदासी नहीं चाहिये। गृहस्थीमें होते हैं। कीर्ति-लालसा, मान-सम्मान बहुत घातक

कई संकट आते हैं, फिर भी गृहस्थीमें इन संकटोंसे रहेगी। उसीको रामके चरणोंमें अर्पित कर दो, उसे पुनश्च संघर्ष करना चाहिये, उन्हें मात देना ही जीवन है। मैं पनपने मत दो। गृहस्थी-सम्बन्धी, परमार्थ-सम्बन्धी जो सुनना चाहता हूँ कि तुम संकटोंको पार कर चुके हो। भी हुआ वह अच्छा ही हुआ, और भगवान् रामकी कृपासे संकटोंसे परेशान होनेपर भी उनका स्पर्श चित्तको नहीं ही हुआ। यह ध्यानमें रखिये कि यह सिवाय भगवानुकी होना चाहिये। यह तत्त्व ध्यानमें रखकर, अपनेमें कृपाके होता नहीं। अत: पूज्य रघुपतिको कभी मत भूलो। बढ़ती आयुके कारण शरीर क्षीण होगा ही, इसलिये भगवानुका ही चिन्तन चलना चाहिये। मेरा यह कहना तुम साधारण मत समझो, विश्वमें इसके सिवाय दूसरी सावधान रहकर कार्य करना चाहिये। शरीरको आलसी हितकारक बात ही नहीं है। मनमें यह धारणा होनी नहीं होने देना चाहिये। परिस्थितिके अनुसार कार्यरत चाहिये कि मैं किसी बातका कर्ता नहीं हूँ। मैं तो अब रहना कर्तव्य ही है। वृद्धावस्थाके कारण हम शरीरके रामका हो गया हूँ। सिवाय नामस्मरणके कोई बात अधीन हो जाते हैं, वृद्धावस्था स्पष्ट दिखायी देती है। चित्तमें नहीं आनी चाहिये। मानापमानका पूर्ण त्याग फिर भी भक्तिभाव क्षीण नहीं होना चाहिये। आनन्द-करके, रघुनन्दन रामका ही ध्यान करते रहना चाहिये। मंगलपूर्वक गृहस्थी करके चित्तमें सन्तोष रखना चाहिये। जितना बन सके उतना रामनाम जपना चाहिये, चित्त चित्तके सन्तोषकी स्थिति दृढ़ रखो, उसे किसी बातपर प्रभु रामकी ओर रखना चाहिये, परिवारमें रहते हुए अवलम्बित मत रखो। व्यवहारकी लाभ-हानिमें मन भी, पत्नी, बालकोंके साथ रहकर भी प्रभु रामका ध्यान कार्यरत न रखते हुए भी सन्तोष प्राप्त हो सकता है। अहंकार ही सन्तोष प्राप्त न होनेमें बडी बाधा है। हम करो। परमात्माको साक्षी रखकर रघुनन्दनका भजन, पूजन, चिन्तन करो। हिम्मत मत हारो; क्योंकि रघुवीरका स्वयं इसके लिये जिम्मेदार हैं। देह-शरीर जबतक है, सहारा तुम्हें है। तबतक उससे सम्बन्धित दु:ख या भोग तो आनेवाले ही हैं, उसकी जिम्मेदारी शरीरपर छोड दो। लेकिन मनके बुढ़ापा आ गया, शरीर क्षीण हो गया, फिर भी अहंकार वैसा ही है, उसका त्याग करो। वृद्धावस्थामें सन्तोषकी अवस्था मत छोडो। उसे बनाये रखो। यदि गृहस्थीकी समस्याओंकी ओर कम ध्यान दो। पुत्रोंका हमारा दृढ़ विश्वास प्रभु राममें होगा तो चिन्ताका कोई मार्गदर्शनकर सुखी रहना चाहिये। आवश्यकता पड्नेपर कारण ही नहीं रहेगा। ऐसी मनकी अवस्था रामनाम, औषधका सेवन करो, लेकिन दुखी मत बनो। शरीर राम-राम कहनेसे ही होती है। हमें भगवान्से एकरूप हो थकनेपर भी आसक्ति कम नहीं होती। जबतक शरीर है, जाना चाहिये। दयाघन रघुनाथ निश्चय ही कृपा करेंगे। तबतक अहंकार-यह मेरा, वह मेरा-की वृत्ति बनी [संग्राहक — श्रीगोविन्द सीताराम गोखले] जोड़ीं कितनी चीजें!' (श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०) प्रारम्भिक जीवन की सोचो कोई जीता सदा जितना सोचा था, सब पाया। मृत्यु ही एक सत्य सको तो कुछ करो फिर भी देखो इस मन ने नित नया कोई इक लक्ष्य बनाया॥ जो परम कर्तव्य मरते दम तक यूँ ही ये मन तिल-तिल जतन लगाकर जोड़ीं कितनी चीजें तन-धन खाँपा। सब कुछ पाकर रहेगा प्यासा। फिर क्यों खोते दुर्लभ जीवन भरा नहीं मन, फिर लाओगे

Hinduism Discorवें ख्री eraie raint lips://ब्रेड क्या पुर्वाणी arma | MADE WIT किसी किसी हिसे - Armin व्यक्ति शि

िभाग ९४

संख्या ३] भक्तके लक्षण भक्तके लक्षण (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) भगवानुके भक्तोंका बडा महत्त्व है। वे जगतुके लिये जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥ आदर्श होते हैं; क्योंकि भगवद्भिक्तके प्रतापसे उनमें दुर्लभ भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा।। दैवी गुण अनिवार्यरूपसे प्रकट हो जाते हैं, जो उनके समीप ही बैठे हुए भक्तराज हनुमान्ने मन-ही-मन स्वाभाविक लक्षण होते हैं। भक्तका स्वरूप जाननेके लिये सोचा, सुग्रीव क्या कह गये। अरे, जिसका नाम भूलसे उन लक्षणोंका जानना आवश्यक है। उनमेंसे कुछ ये हैं— निकल जानेपर मनुष्य संसारके बन्धनसे छूट जाता है, उस मेरे रामके चरणोंमें आनेवालेके लिये बन्धनकी बात १-भक्त अज्ञानी नहीं होता, वह भगवानुके प्रभाव, गुण और रहस्यको तत्त्वसे जाननेवाला होता है। प्रेमके कैसी? परंतु स्वामी और सेनापतिके बीचमें बोलना लिये ज्ञानकी बडी आवश्यकता है। किसीको किसी अनुचित समझकर हनुमान् चुप रहे। अंशमें भी जाने बिना उससे प्रेम नहीं हो सकता और शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामने सुग्रीवकी प्रशंसा प्रेम होनेपर ही उसका गुह्यतम यथार्थ रहस्य जाना जाता करते हुए अपना व्रत बतलाया-है, भक्त भगवान्के गुह्यतम रहस्यको जानता है, इसीलिये सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भय हारी॥ भगवान्के प्रति उसका प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहता है। हनुमान्का मन खिल उठा। वाल्मीकिरामायणमें भी भगवान् रससार हैं। उपनिषदें भगवान्को 'रसौ वै सः' भगवान् श्रीरामने ऐसी ही बात कही है-कहती हैं। इस प्रेममें भी द्वैत नहीं भासता। प्रेमकी सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। प्रबलतासे ही राधाजी श्रीकृष्ण बन जाती हैं और अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥ श्रीकृष्ण श्रीराधाजी। कबीर साहब कहते हैं— 'जो एक बार भी मेरी शरण होकर यह कह देता है कि मैं तेरा हूँ, मैं उसको सम्पूर्ण भूतोंसे अभय कर जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नायँ। देता हूँ, यह मेरा व्रत है।' भला, ऐसी हालतमें प्रेम-गली अति साँकरी, यामें दो न समायँ॥ वस्तुत: ज्ञानी और भक्तकी स्थितिमें कोई अन्तर भगवान्का सच्चा भक्त निर्भय क्यों न होगा? नहीं होता। भेद इतना ही है, ज्ञानी 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' ३-भक्तका किसी विषयमें ममत्व नहीं होता। उसका कहता है और भक्त 'वासुदेव: सर्विमिति'। अथवा सारा ममत्व एकमात्र अपने प्राणाराध्य भगवान्में हो जाता गोसाईंजीकी भाषामें वह कहता है-है। फिर जगतुके पदार्थोंमें कहीं उसका ममत्व यदि रहता सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥ है तो उनको भगवान्के पूजनकी सामग्री या भगवान्की २-भगवान्का भक्त निर्भय होता है। वह जानता वस्तु समझकर ही रहता है, अपने या अपने भोगके सम्बन्धसे है कि समस्त विश्वके स्वामी, यमराजका भी शासन नहीं। रामचरितमानसमें भगवान्ने कहा है— करनेवाले भगवान् श्यामसुन्दर हर घड़ी मेरे साथ हैं, मेरे जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥ रक्षक हैं। फिर उसे डर किस बातका हो? भगवानुकी सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनिह बाँध बरि डोरी॥ शरण जिसने ले ली, वही निर्भय हो गया। लंकामें अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥ रावणके द्वारा अपमानित होकर जब विभीषण नाना संसारमें मनुष्य चारों ओर ममताके बन्धनसे जकड़ा प्रकारके मनोरथ करते हुए भगवानकी शरणमें आये, तब हुआ है। उसका एक-एक रोम ममत्वके धागेसे बँधा है। भगवान् कहते हैं—'मनुष्य माता, पिता, भाई, पुत्र, उन्हें द्वारपर खड़े रखकर सुग्रीव इस बातकी सूचना देने भगवान् श्रीरामके पास गये। श्रीरामने सुग्रीवजीसे पूछा, स्त्री, शरीर, धन, मकान, सुहृद् और परिवार आदि क्या करना चाहिये? उन्होंने उत्तर दिया-सबमेंसे ममताके सूत्रोंको अलग करके उनकी एक ही

भाग ९४ मजबूत डोरी बट ले और उस डोरीके द्वारा अपने मनको इसीलिये वह शोकरहित हुआ सर्वदा आनन्दमें मग्न मेरे चरणोंसे बाँध दे, तो वह सज्जन मेरे मन-मन्दिरमें रहता है। उसी प्रकार निवास करता है, जिस प्रकार लोभीके मनमें ४-भक्तमें अभिमान नहीं होता, वह तो सारे जगतुमें धन।' यह ममताका बन्धन इसीलिये कच्चे धागेका अपने स्वामीको व्याप्त देखता है और अपनेको उनका बतलाया गया है कि इसके टूटते देर नहीं लगती। जहाँ सेवक समझता है। सेवकके लिये अभिमानको स्थान कहीं स्वार्थमें बाधा आयी कि ममताका धागा टूटा। कहाँ ? उसके द्वारा जो कुछ होता है, सो सब उसके विषयजनित सारा प्रेम अपने लिये होता है न कि भगवान्की शक्ति और प्रेरणासे होता है। ऐसा विनम्र प्रेमास्पदके लिये। इसलिये यह टूटता भी बहुत शीघ्र है। भक्त सदा सावधानीसे इस बातको देखता रहता है कि परंतु जैसे धागोंकी बड़ी मजबूत रस्सी बट लेनेपर वह कहीं मेरे किसी कार्यद्वारा या मेरी किसी चेष्टाद्वारा विश्वव्याप्त मेरे स्वामीका तिरस्कार न हो जाय। मेरे द्वारा नहीं टूटती, इसी प्रकार जगत्की सारी ममता सब जगहसे बटोरकर एक भगवान्के चरणोंमें लगा दी जाय तो फिर सदा-सर्वदा उनकी आज्ञाका पालन होता रहे, मैं सदा उसके नष्ट होनेकी कोई सम्भावना नहीं। इसीलिये यह उनकी रुचिके अनुकूल चलता रहूँ। वह अपनेको उस कहा गया है कि भगवानुके प्रति होनेवाला सच्चा प्रेम सूत्रधारके हाथकी कठपुतली समझता है, सूत्रधार जैसे सदा बढ़ता ही रहता है, कभी घटता नहीं। नचाता है, पुतली वैसे ही नाचती है, वह इसमें अभिमान संसारमें दु:खोंका एक प्रधान कारण ममता है। न क्या करे? अथवा यों समझिये कि यह सारा संसार मालुम कितने लोग प्रतिदिन मरते हैं और कितने लोगोंके स्वामीका नाट्यमंच है, इसमें हम सभी लोग नट हैं, जिसको स्वामीने जो स्वाँग दिया है, उसीके अनुसार धनका नित्य नाश होता है, पर हम किसीके लिये नहीं रोते; किंतु यदि हमारे घरका कोई आदमी मर जाय या सांगोपांग अभिनय करना हमारा कर्तव्य है। जो आदमी अपना कुछ धन नष्ट हो जाय तो शोक होता है। इसका मालिककी रुचिके अनुसार उसका काम नहीं करता, वह नमकहराम है और जो मालिककी सम्पत्तिको अपनी मान कारण ममता ही है। मान लीजिये, हमारा एक मकान है, यदि कोई आदमी उसकी एक ईंट निकाल देता है तो हमें लेता है, वह बेईमान है। नट पार्ट करता है, स्टेजपर बहुत बुरा मालूम होता है। हमने उस मकानको बेच किसीके साथ पुत्रका-सा, किसीके साथ पिताका-सा, दिया और उसकी कीमतका चेक ले लिया। अब उस किसीके साथ मित्रका-सा यथायोग्य बर्ताव करता है, मकानकी एक-एक ईंटसे सारी ममता निकलकर हमारी परंतु वस्तुत: किसी भी वस्तुको—अपनी पोशाकतकको जेबमें रखे हुए कागजके टुकड़े चेकमें आ गयी। अब भी वह अपनी नहीं समझता। इसी प्रकार भगवान्का चाहे मकानमें आग लग जाय, हमें कोई चिन्ता नहीं। भक्त उनकी नाट्यशालारूप इस दुनियामें उनके संकेतानुसार उन्हींके दिये हुए स्वॉॅंगको लेकर आलस्यरहित हो चिन्ता है उस कागजके चेककी। बैंकमें गये, चेकके उन्हींकी शक्तिसे कर्म किया करता है। इसमें वह रुपये हमारे खातेमें जमा हो गये। अब भले ही बैंकका लिपिक उस कागजके टुकड़ेको फाड डाले, हमें कोई अभिमान किस बातका करे? वह मालिकका विधान चिन्ता नहीं। अब उस बैंककी चिन्ता है कि वह कहीं किया हुआ—बताया हुआ अभिनय करता है, न कि फेल न हो जाय; क्योंकि उसमें हमारे रुपये जमा हैं। इस अपनी ओरसे कुछ। पार्ट करनेमें कभी चूकता नहीं; क्योंकि इसमें मालिकका खेल बिगड़ता है और अपना प्रकार जहाँ ममता है, वहीं शोक है, यदि हमारी सारी ममता भगवानुमें अर्पित हो जाय, फिर शोकका जरा-सा कुछ मानता नहीं; क्योंकि वह जानता है कि सब मालिकका है, मेरा कुछ भी नहीं, वह मालिकको ही भी कारण न रहे। भक्त तो सर्वस्व अपने प्रभुके अर्पणकर उनको अपना बना लेता है और स्वयं उनका बन जाता सबका नियन्त्रण करनेवाला और सर्वत्र व्याप्त देखता है है। उसमें कहीं दूसरेके लिये ममता रहती ही नहीं, और अपनेको उनका अनन्य सेवक समझता है।

संख्या ३] भक्तके लक्षण नहीं जवाहिर सोना चाँदी त्रिभुवनकी संपति चहतीं॥ सो अनन्य जाकें असि मित न टरइ हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥ भावैं ना दुनियाकी बातें दिलवरकी चरचा सहती। ५-भक्त किसीसे द्वेष नहीं करता या किसीपर क्रोध 'ललितकिसोरी' पार लगावैं मायाकी सरिता बहती॥ नहीं करता। किससे करे ? किसपर करे ? सारा जगत् तो भक्त तो केवल अपने प्रियतम स्वामीकी सेवामें ही उसे स्वामीका स्वरूप दीखता है। शिवजी महाराज रहना चाहता है, वह सेवाको छोड़कर मुक्ति भी नहीं ग्रहण करता। करे भी कैसे? भगवान्के उस अनन्य कहते हैं-सेवकके लिये मायाका बन्धन तो है नहीं, जिससे वह उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध। निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥ मुक्त होना चाहे। अब तो केवल भगवत्-सेवाका बन्धन है, भक्त इस प्यारे बन्धनसे मुक्ति क्यों चाहेगा? भक्त विनय, नम्रता और प्रेमकी मूर्ति होता है। ७-भक्त किसी वस्तुकी कामना नहीं करता। उसे श्रीमद्भागवतमें भगवान् कहते हैं— वह वस्तु प्राप्त है, जिसके सामने सब कुछ तुच्छ है, तब सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत वह किसकी कामना करे और क्यों करे ? वस्तुत: प्रेममें दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥ कोई कामना रहती ही नहीं। प्रेममें देना है, वहाँ लेनेका मेरी सेवाको छोड़कर मेरे भक्त सालोक्य, सार्ष्टि, तो नाम ही नहीं है। यही काम और प्रेमका बडा भारी सामीप्य, सारूप्य और एकत्व मुक्तियोंको देनेपर भी भेद है। काममें प्रेमास्पदके द्वारा अपने सुखकी चाह है नहीं लेते हैं। और प्रेममें अपने द्वारा प्रेमास्पदको सुखी बनानेकी उत्कट भक्त जानता है, मेरे प्रभु समस्त ब्रह्माण्डोंके एकमात्र स्वामी हैं, मुक्ति उनके चरणोंकी दासी है। वह इच्छा है। उसके लिये वहीं सबसे बड़ा सुख है, जिससे उसके प्रेमास्पदको सुख मिले, चाहे वह अपने लिये कहता है— कितने ही भयानक कष्टका कारण क्यों न हो। अब तो बंध-मोक्षकी इच्छा व्याकुल कभी न करती है। प्रेमास्पदके सुखको देखकर प्रेमीकी भयानक पीड़ा तुरंत मुखड़ा ही नित नव बंधन है मुक्ति चरणसे झरती है।। दिव्य सुखके रूपमें परिणत हो जाती है। अतएव मुक्तिदायिनी गंगाजी श्रीभगवान्के चरणोंका ही तो भगवान्का प्रेमी कभी कामी नहीं होता, वह तो जल हैं। चातककी भाँति मेघरूप भगवान्की ओर सदा एकटक एक समय ब्रह्माजी भगवान्के द्वारपर पहुँचे। दृष्टिसे निहारा करता है। बादल यदि न बरसे या जलके भगवान्ने द्वारपालके द्वारा उनसे पुछवाया कि 'आप बदले ओले बरसाये, तो भी वह प्रेमके नेमका पक्का कौन-से ब्रह्मा हैं ?' ब्रह्माको इस बातपर बड़ा आश्चर्य पपीहा उधरसे मुँह नहीं मोड़ता। हुआ, वे सोचने लगे—'कहीं ब्रह्मा भी दस-बीस थोड़े रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखि गये अंग। ही हैं।' उन्होंने कहा—'जाओ, कह दो, चतुर्मुख ब्रह्मा आये हैं।' भगवान्ने उनको भीतर बुलाया। ब्रह्माजीका 'तुलसी' चातक प्रेमको, नित नूतन रुचि रंग॥ कौतूहल शान्त नहीं हुआ। उन्होंने पूछा—'भगवन्! बरिष परुष पाहन पयद, पंख करे टुक टूक। 'तुलसी' परी न चाहिये चतुर चातकहिं चूक॥ आपने यह कैसे पूछा कि कौन-से ब्रह्मा हैं! क्या मेरे अतिरिक्त और भी कोई ब्रह्मा है ?' भगवान् हँसे, उन्होंने यही दशा भक्तकी है। फिर वह चाहे भी क्या? जगत्का सारा ऐश्वर्य विभिन्न ब्रह्माण्डोंके ब्रह्माओंका आवाहन किया। तत्काल जिसके ऐश्वर्यका एक कण भी नहीं है, वह सर्वलोकमहेश्वर वहाँ चारसे लेकर हजार मुँहतकके अनेकों ब्रह्मा आ श्यामसुन्दर उसका प्रियतम स्वामी है, उसकी सेवाको छोड़कर पहुँचे। भगवान्ने कहा—'देखो, ये सभी ब्रह्मा हैं। वह क्या चाहे ? इसीलिये ललितिकशोरीजीने गाया है— अपने-अपने ब्रह्माण्डके ब्रह्मा हैं।' तब ब्रह्माजीका सन्देह द्र हुआ। ऐसे ब्रह्माओंके एकमात्र स्वामी, जिसके अष्टिसिद्धि नवनिद्धि हमारी मुट्ठीमें हरदम रहतीं।

प्राणप्रिय हों, वह भक्त किस वस्तुकी कामना करे। 'जो मनुष्य मृत्युके समय मुझको स्मरण करता भक्त तो निष्कामभावसे नित्य-निरन्तर अति प्रेमके हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको ही प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है।' साथ उनका चिन्तन ही करता रहता है। तुलसीदासजीने

कहा है— कमिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।

तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥ भक्त निरन्तर अपने भगवान्के लिये कामी और लोभीकी इस दशाको प्राप्त रहता है। वह कैसे उनको भुलाये ? और

कैसे दूसरे विषयके लिये कामना या लोभ करे ? अतएव भक्त सदा-सर्वदा भगवानुके चिन्तनमें ही

चित्तको लगाये रखता है। भगवान्ने भी गीतामें स्थान-

स्थानपर नित्य-निरन्तर चिन्तन करनेकी आज्ञा दी है। आठवें अध्यायमें कहा है— अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।

उत्तम पति प्राप्त करनेका साधनस्वरूप व्रत एक बार स्वर्गकी अप्सराओंने देवर्षि नारदजीसे

यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥५॥

दान कर दे।

पूछा—'देवर्षे! आप ब्रह्माजीके पुत्र हैं। हमें उत्तम पति पानेकी अभिलाषा है। भगवान् नारायण हमारे प्राणपति हो सकें, इसके लिये आप हमलोगोंको कोई व्रत बतानेकी कृपा करें।' नारदजीने कहा-प्राय: सबके लिये कल्याणदायक

नियम यह है कि प्रश्न करनेके पूर्व प्रश्नकर्ता विनयपूर्वक प्रणाम करे, पर तुमलोगोंने इस नियमका पालन नहीं किया, क्योंकि तुम्हें युवावस्थाका गर्व है। फिर भी तुमलोग देवाधिदेव भगवान् विष्णुके नामका कीर्तन करो और उनसे वर माँगो—'प्रभो! आप हमारे स्वामी होनेकी कृपा करें।' इससे तुम्हारा सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होगा—इसमें कोई संशय नहीं है। साथ ही मैं

दिन यह व्रत करना चाहिये। रातमें विधिवत् भगवान्

एक व्रत भी बताता हूँ, जिसे करनेसे भगवान् श्रीहरि स्वयं वर देनेके लिये उद्यत हो जाते हैं। चैत्र और वैशाखमासके शुक्लपक्षमें जो द्वादशी तिथि है, उस स्मरण करनेकी क्या आवश्यकता है। मरनेके समय भगवानुको याद कर लेंगे। याद करके मरनेपर भगवत्प्राप्तिका वचन भगवान्ने दे ही दिया है। इसी भ्रान्त धारणाको दूर करनेके लिये भगवान् ने फिर

इसपर लोग सोच सकते हैं कि फिर जीवनभर भगवानुका

िभाग ९४

कहा है-यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥६॥ 'हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावका स्मरण करता हुआ शरीरका

वह सदा उसी भावसे भावित रहा है।' कि भगवान्की प्रतिमाके ऊपर लाल फूलोंसे एक

मण्डप बनवाये, नृत्य, गीत एवं वाद्यके साथ रातमें

जागरण करे तथा 'ॐ भवाय नमः', 'ॐ अनङ्गाय

त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि

नमः ', 'ॐ कामाय नमः ', 'ॐ सुशास्त्राय नमः ', **'ॐ मन्मथाय नमः'** तथा **'ॐ हरये नमः'** कहकर क्रमश: भगवान्के सिर, कटि, भुजा, उदर एवं चरण आदिकी पूजा करे। फिर भगवान्को प्रणामकर रात्रि-जागरणकी विधि सम्पन्न करके प्रात:काल

भगवान्की वह प्रतिमा वेद-वेदांगके जानकार ब्राह्मणको

अप्सराओ! इस प्रकार व्रत करनेपर इच्छानुकूल भगवान् विष्णु अवश्य पतिरूपमें तुम्हें प्राप्त होंगे। इसके पश्चात् ईखके पवित्र रस तथा मल्लिका आदिके फूलोंसे उन देवेश्वरकी पूजा करना। इस प्रकार कहकर देवर्षि नारदजी उसी क्षण वहाँसे

फलस्वरूप स्वयं भगवान् श्रीहरि उनपर सन्तुष्ट होकर श्रीमातिको।sharbiseold **उ**न्हिर्गान hत्तुर्जाशिक उत्तर्भिक से स्वतिकार्य प्रतिकार कार्यक्र कार कार्यक्र कार्यक्र

चले गये। उन अप्सराओंने व्रतकी विधि सम्पन्न की।

संख्या ३] दर्गा-पाठ दुर्गा-पाठ [शतसहस्रायुतलक्ष चण्डीप्रयोग] (पं० श्रीहनूमानजी शर्मा) और उसमें भी प्रतिदिन केवल एक ही पाठ बन सके (१) सुख-सन्तित और सौभाग्यकी वृद्धि एवं आपत्ति, तो उसके लिये प्रात:स्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर विघ्न और देशोपद्रवादिकी निवृत्तिके निमित्तसे दुर्गाकी आसनस्थ सप्तशतीस्तोत्रका दुर्गाके रूपमें गन्धाक्षतादिसे उपासना की जाती है और भगवत्कृपासे उसमें अभूतपूर्व पूजन करके (मन:संकल्पकी पूर्तिके लिये) **'ॐ मार्कण्डेय** या अद्वितीय सफलता मिलती है। महर्षि मार्कण्डेयजीने उवाच' 'सावर्णि: सूर्यतनयो'से आरम्भ करके **'सावर्णिर्भविता मनुः ॐ'** पर्यन्त समग्र पाठ करे और भगवतीको शीघ्रातिशीघ्र प्रसन्न करनेके अनुरोधसे अपने महामायाके सामने दोनों हाथ जोड़कर 'क्षमा-प्रार्थना' 'मार्कण्डेयपुराण' में 'सप्तशती' (स्तोत्र) नामसे दुर्गापाठका संयोजन किया है, जिसका एक-एक श्लोक ही नहीं; करे। इस प्रकार प्रतिदिन करता रहे। (३) यदि कार्य प्रत्येक श्लोकका एक-एक अक्षर भी मन्त्र है और कुछ महत्त्वका हो और पाठ प्रतिदिन एक ही किया जाय उपासक यदि योग्य हो तो उसे आशातीत सफलता मिल तो उसमें सर्वप्रथम संकल्प करके 'पञ्चोपचार' (स्नान, सकती है। आपत्तिके अवसरोंमें ब्रह्मादि देवोंने, घननादादि गन्ध, पुष्प, धूप और नैवेद्य)-से देवीकी सुवर्णमयी मूर्तिका या चित्रका पूजन करे। फिर रात्रिसूक्तका पाठ दानवोंने और सुरथादि मानवोंने महामायाके प्रभावसे ही करके सप्तशतीका न्यास, ध्यान, नवार्णमन्त्रका न्यास, सर्वाभीष्ट प्राप्त किये थे। 'कलौ चण्डीविनायकौ' के अनुसार वर्तमान समयमें भी अमित संकट टालने, रिपुरोग ध्यान और नवार्णमन्त्रके १०८ जप करे। तदनन्तर और राजभयादि मिटाने, स्त्री-पुत्र या सौभाग्यादि प्राप्त शान्तचित्त और एकाग्र मनसे देवीके माहात्म्यका मनमें करने और विजयश्री उपलब्ध होने आदिके अनेकों कार्य मनन करता हुआ 'दुर्गापाठ' करे। (पाठ सादा हो या दुर्गापाठके द्वारा ही सफल होते हैं और दुर्गापाठी विद्वान् सम्पुटित—चाहे जैसा हो) शुद्ध, सुस्पष्ट और समानोच्चारणसे होना चाहिये 'गीती शीघ्री शिर:कम्पी' आदि न होना इसीको महामन्त्र या महौषधि अथवा तत्काल फलदायी महाशक्ति मानते हैं और प्राय: प्रत्येक प्रकारके प्रयोजनोंकी चाहिये। पाठके अनन्तर नवार्णके १०८ जप और करे, सिद्धिके लिये विशेषकर दुर्गापाठका ही प्रयोग करते हैं। तत्पश्चात् उसका न्यास और जपोंका समर्पण करके देवीसूक्तका पाठ और क्षमा-याचना करे। (सप्तशतीका यद्यपि दुर्गापाठकी प्रयोगविधि सामान्यरूपसे एक ही प्रकारकी है और उससे प्राय: सभी मनोरथ सिद्ध होते न्यास न करे। यदि पाठ ३ या ५ हो तो अन्तिम पाठके पीछे क्षमा-याचना करे।) यदि आवश्यक हो और

हैं तथापि प्रयोजनकी लघुता, महत्ता या कठिनता आदिके अनुसार प्रयोगकी शास्त्रोक्त-विधि भी अनेक प्रकारकी हो जाती है, अत: सर्वसाधारणके हित-निमित्त यहाँ उसका दिग्दर्शन कराया जाता है। यथा— (२) (१) देवीकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये तद्गतचित्त होकर यदि सामान्यरूपसे एक पाठ भी प्रतिदिन किया

जाय और किसी प्रकारकी वाञ्छा (याञ्चा) या कामना

न हो तो भी पाठकके सभी अभीष्ट सिद्ध होते रहते हैं

और उसके प्रति भगवतीकी अविच्छिन्न कृपा उत्तरोत्तर

बढती रहती है। (२) प्रयोग यदि सकाम किया जाय

कर दिया करे। (४) कदाचित् नवरात्रपर्यन्त पाठ करना अभीष्ट हो तो आरम्भमें गणपति-पूजनादि करनेके अनन्तर घटस्थापन, यववपन और देवीका पूजन करे और फिर उपर्युक्त प्रकारसे पाठ करे। और नवरात्र पूर्ण होनेपर तद्दशांश हवन, तद्दशांश तर्पण, तद्दशांश मार्जन और यथासामर्थ्य ९ ब्राह्मणोंको भोजन कराये। यदि कार्य कुछ अधिक महत्त्वका हो—रिप्, रोग, राजभय, अग्निदाह

या चौरादिका भय हो-राष्ट्रभंग, महामारी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि या अन्य किसी भी प्रकारकी संकटापन्न

अवसर मिले तो कवच और अर्गला आदिका पाठ विशेष

१६ कल्प	प्राण [भाग ९४
_ ************************************	
अवस्था उपस्थित हुई हो अथवा लोकहितकारी व्यापक	मूर्तिका स्थापन करे। उसके समीपके उभय पार्श्वमें
महोत्सवादिका करना-कराना आवश्यक हो तो ऐसे	मातृका और नवग्रहादिका यथास्थान स्थापन करके
अवसरोंमें 'शतसहस्रायुतादि चण्डी' प्रयोगके द्वारा	सर्वप्रथम गणपति-पूजन, मातृका-पूजन, नान्दीश्राद्ध,
'महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती' का आश्रय लेना	पुण्याहवाचन, आचार्यादिका वरण, कलशपूजन, दुर्गा-
अतिशय फलदायी होता है। शास्त्रकारोंने—	भगवतीका षोडशोपचार-पूजन और समवयस्क (या दो
(\$)	से आठ वर्षतककी) सत्कुलीन सुस्वरूप दस कन्याओंका
'शतचण्डी'के सामान्य और विशेष दो प्रकार	पूजन करके आमन्त्रित ब्राह्मणोंसे प्रायोगिक पाठ प्रारम्भ
निर्दिष्ट किये हैं। सामान्यरूपके प्रयोगमें उपर्युक्त प्रकारके	करनेकी प्रार्थना करे।
सौ पाठ करनेसे एक शतचण्डी पूर्ण होती है। इसीको	(५)
यदि तीन ब्राह्मण एकत्र रहकर अर्थात् प्रत्येक प्रतिदिन	एतन्निमित्त उपस्थित हुए दसों ब्राह्मण आरम्भके
एक पाठ करे तो ३३+१ दिनमें सम्पूर्ण हो सकती है और	दिन प्रात:कालीन शौच-स्नान, सन्ध्योपासन, पूजापाठ या
यदि एक ही व्यक्ति प्रतिदिन तीन पाठ करे तो उसके द्वारा	जपादिके नित्यकर्मसे निवृत्त होकर शतचण्डीका पूर्वाङ्ग
भी उपर्युक्त (३३+१ दिनकी) अवधिमें समाप्त हो	(गणेश-पूजनादि) प्रारम्भ होनेके पहले ही यथास्थान
सकती है। इसमें भी दशांशका हवन, तर्पण, मार्जन और	उपस्थित होकर पूर्वाङ्गके कामोंमें सहयोग दें—और
ब्राह्मण-भोजन करना आवश्यक होता है। कदाचित्	आवाहित देवादिका पूजन हो जानेके अनन्तर अपने-
अर्थाभावादिवश हवनादि न बन सके तो दशांशके दूने	अपने आसनोंपर यथास्थान पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख

बैठ करके 'प्रधान' (यजमान)-कृत पूर्वसंकल्पकी अर्थ-

सिद्धिका संकल्प करके अपनी-अपनी पुस्तकोंका देवीके रूपमें पंचोपचारसे पूजन करके यथाविधि 'दुर्गापाठ' करें

और पाठके समाप्त होनेपर **'यदक्षर**-^१**पदभ्रष्टं'**

'^२यन्मात्राविन्दु' 'यदत्र^३पाठे' और 'न मन्त्रं^४ नो

यन्त्रं' से क्षमायाचना करके राजभोगका नैवेद्य अर्पण

करें, उपर्युक्त दस कन्याओंको भोजन करायें और

तत्पश्चात् दुर्गापाठी एक समय भोजन करें। स्मरण रहे कि भोजनमें उत्तम प्रकारके शुद्ध एवं सात्त्विक पदार्थींका

प्राधान्य रहे। सभी ब्राह्मण रात्रिमें भूमिपर शयनकर

ब्रह्मचर्यमें रहें, हृदयमें भगवतीका ध्यान रखें और आत्म-

दिन उक्त दसों ब्राह्मणोंके द्वारा दस पाठ, दूसरे दिन दो-दो

 (ξ)

इस प्रकार प्रत्येकका एक-एक पाठ होनेसे पहले

व्यक्तमव्यक्तमम्ब।

कल्याणकी कामना करें।

पाठ अधिक करनेसे प्रयोगकी पूर्ति हो सकती है और

स्थानमें परम्परासे दुर्गाकी उपासना एवं नित्यप्रति यथा-

विधि दुर्गापाठ करनेवाले सात्त्विकी, सन्तोषी, सच्चरित्र, सत्कुलीन, सत्यवका, शास्त्रज्ञाता, अक्रोधी, धैर्यधारी

और जितेन्द्रिय दस ब्राह्मणोंका आदरपूर्वक आवाहन

करके षोडश-हस्तात्मक वस्त्रादिके ध्वजा, पताका, तोरण, बन्दनवार और वितानादिसे विभूषित रंग-बिरंगे

लता-पत्र एवं फल-पुष्पादिसे सुशोभित और जलपूर्ण

सुपूजित कलशादिसे संयुक्त 'मण्डप' के मध्यमें दारु

(काष्ठ)-मयी अथवा वालुकामयी वेदीके ऊपर यथा-

विधि स्थापन किये हुए स्वर्ण, रजत, ताम्र या मृण्मय-

निर्मित कलशके ऊपर सिंहारूढ देवीकी सुवर्णनिर्मित

१. यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत्। तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि॥

२. यन्मात्राविन्दुविन्दुद्विदयपदपदद्वन्द्ववर्णाद्विहीनं भक्त्या भक्त्यानुपूर्वे प्रकृतिगुणवशाद्

न जाने मुद्रास्ते तदिप च न जाने विलपनं परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम्॥ (दुर्गोपासना)

मोहादज्ञानतो वा पठितमपठितं साम्प्रतं ते स्तवेऽस्मिन् तत्सर्वे सांगमास्तां भगवित वरदे त्वत्प्रसादात्प्रसीद॥ ३. यदत्र पाठे जगदिम्बिके मया विसर्गविन्द्वक्षरहीनमीरितम्। तदस्तु सम्पूर्णतमं प्रसादतः सङ्कल्पसिद्धिस्तु सदैव जायताम्॥ ४. न मन्त्रं नो यन्त्रं तदिप च न जाने स्तुतिमहो न चाह्वानं ध्यानं तदिप च न जाने स्तुतिकथाः।

(8)

ज्योतिष-शास्त्रोक्त शुभिदन और धर्मशास्त्रोक्त शुभ

यदि विशेष रीतिसे की जाय तो—

संख्या ३] दुर्गा-	-पाठ १७
<u> </u>	**************************************
पाठ होनेसे बीस पाठ, तीसरे दिन तीन-तीन पाठ होनेसे	हो सकती है। अथवा उपर्युक्त दस-दस ब्राह्मणोंके प्रत्येक
तीस पाठ और चौथे दिन चार-चार पाठ होनेसे चालीस	वर्गके द्वारा चार-चार दिनमें एक-एक 'शतचण्डी 'हो तो
पाठ होनेपर चार दिनमें सौ पाठ होते हैं और इस प्रकार	प्रथमारम्भके चार दिनमें एक 'सहस्रचण्डी', चालीस दिनमें
होनेसे प्रथमारम्भकी एक शतचण्डी समाप्त हो जाती है।	एक 'अयुतचण्डी' और चार सौ दिन (एक वर्ष ४०
यह अवश्य है कि इस प्रकार करनेसे दुर्गापाठियोंको प्रतिदिन	दिन)-में एक 'लक्षचण्डी' सम्पन्न हो सकती है। यदि
उत्तरोत्तर अधिक परिश्रम होता है; परन्तु त्वरापूर्ण कार्यके	एक समयमें सद्गुणसंयुक्त सौ ब्राह्मणोंका एकत्र होना
लिये इस विधानसे ही शीघ्र सिद्धि होती है। यदि इसमें	असम्भव हो तो एक वर्गके दस ब्राह्मणोंसे चार दिनमें
कठिनता प्रतीत हो अथवा दुर्गापाठी इसमें स्वयं असामर्थ्य	'शतचण्डी' चालीस दिन (१ महीना १० दिन)-में
प्रकट करें तो वे ही दस ब्राह्मण प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति	'सहस्रचण्डी' चार सौ दिन (१३ महीना १०दिन)-में
एक-एक पाठ करे तो दस दिनमें या पाँच ब्राह्मण प्रत्येक	'अयुतचण्डी' और चार हजार दिन (११ वर्ष १ महीना १०
व्यक्ति एक-एक करें तो बीस दिनमें एक शतचण्डी पूर्ण	दिन)-में 'लक्षचण्डी' हो सकती है। (सुयोग्य ब्राह्मण
हो सकती है। स्मरण रहे कि इसमें भी उपर्युक्त हवन-	अधिक मिल जायँ तो प्रतिदिन जितने अधिक पाठ होंगे, उसी
तर्पण-मार्जन और ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये।	अनुपातसे उतनेही कम दिनोंमें ये अनुष्ठान हो सकते हैं।)
शतचण्डीकी पूर्णाहुतिके निमित्त सौ ब्राह्मणोंको भोजन	(८)
कराना चाहिये और मण्डप सोलह हाथका बनाना चाहिये।	ऐसे महान् फलदायी अनुष्ठानोंके सम्पन्न होनेमें
(७)	अनेक प्रकारकी विघ्न-बाधा या असुविधा हो जाया
इसी प्रकार राष्ट्रभंगादि सार्वजनिक अनिष्टकारी	करती है और उनके होनेसे कर्ताका मन:संकल्प अधूरा रह
कारणोंके उपस्थित होने, बलशाली अजेय शत्रुको परास्त	जाता है। अतएव अयुतचण्डी या लक्षचण्डी-जैसे
करने, देशको ईति-भीत्यादिके कष्टोंसे बचाने अथवा	बहुसंख्यक सुयोग्य ब्राह्मणोंके अभावके कारण दीर्घकालमें
राज्यलाभादिके गौरवपूर्ण पद प्राप्त करने आदिके लिये	पूर्ण होनेवाले अनुष्ठानोंमें आरम्भसे समाप्तिपर्यन्तके सभी
'सहस्रचण्डी' करानेसे अतिशय लाभ होता है। शतचण्डीकी	आयोजन एक ही बारमें एकत्र करनेकी अपेक्षा उपर्युक्त
अपेक्षा सहस्रचण्डीमें दसगुना काम है, अतः इसके लिये	क्रमसे पूर्ण होनेवाली एक-एक शतचण्डी या सहस्रचण्डीके
सद्गुणसम्पन्न सौ ब्राह्मण नियुक्त करने चाहिये और उनके	उपयोगी आयोजन उपस्थित करके एक-एकका आरम्भ
दस-दसके दस वर्ग बनाकर प्रत्येक वर्गके दस-दस	और समाप्ति करते हुए—अवकाशप्राप्त अवधिपर्यन्तके
ब्राह्मणोंको यथाविभाग सम्यक् प्रकारसे स्थित करके	समयमें 'शतसहस्रायुत लक्षचण्डी' में जिस किसीतक जो
अनुष्ठानके आरम्भमें सर्वप्रथम गणेशादिका पूजन, ब्राह्मणोंका	भी सम्पन्न हो जाय, उसीको पूर्ण मानकर आरम्भकी
वरण, घटादिका स्थापन, भगवती दुर्गादेवीका षोडशोपचारादि	समाप्ति करते रहें तो उसमें करने-कराने या सहयोग
पूजन और सहस्रचण्डीके प्रस्तुत अनुष्ठानका भक्ति, श्रद्धा,	देनेवालों आदि सभीका कल्याण है। अस्तु!
शान्ति और शास्त्रोक्त विधिके साथ आरम्भ करना चाहिये।	(९)
यद्यपि सहस्रचण्डीमें शतचण्डीसे सभी कार्य दसगुने होते	दुर्गापाठके कामनायुक्त अनुष्ठानोंमें विशेषकर सम्पुटित
हैं और शतचण्डीके समान पाठ-क्रम रहनेसे चार दिनमें	पाठ किया करते हैं और शास्त्रकारोंने विभिन्न प्रकारकी
एक सहस्रचण्डी हो सकती है। तथापि प्रत्येक ब्राह्मण	कामनाओंके लिये सम्पुट भी पृथक्–पृथक् प्रकारके निश्चित
प्रतिदिन एक-एक पाठ करें तो दस दिनमें सहस्रचण्डी,	कर दिये हैं, जो मुद्रित दुर्गापाठमें प्रयोग-विधिके रूपमें
सौ दिनमें अयुतचण्डी और सहस्र दिनमें लक्षचण्डी सम्पन्न	संयुक्त हैं। उनमें 'करोतु सा^१ नः''शरणागतदीनार्त^२',
१. करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः। २. शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे । सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥	

और **'सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो**^१' जैसे सम्पुट सात्त्विकी होनेपर शास्त्रकारोंने कई साधन बतलाये हैं, उनमें एक यह भी है कि **'दुर्गे देवि नमस्तुभ्यम्**^३' इस मन्त्रके दस हजार भी आशार्थियोंके सर्वाभीष्ट सफल करनेमें सबल और जप करे और फिर जब कभी जिस-किसी कामनाके व्यापक हैं। साथ ही **'सर्वाबाधाप्रशमनं^२'** जैसे मन्त्र उत्कट भी हैं, जिनसे महाबली अजेय शत्रु भी परास्त हो सिद्ध होने या न होनेका ज्ञान करनेकी कामना हो तो

जाते हैं। विशेषता यह है कि उक्त मन्त्रके चतुर्थ चरणमें रोग या शत्रुके नामका योग करके विलोम पाठ किया जाय तो महीनोंके मनोरथ दिनोंमें ही सिद्ध हो जाते हैं। उत्कट इच्छा या परमानुरागसे किये जानेवाले अनुष्ठानोंमें

आरम्भहीसे यह इच्छा प्रबल हो जाती है कि—'अपने

कार्यकी सिद्धि होगी या नहीं?'—' अथवा किस रूपमें

सफलता मिलेगी?' इसका ज्ञान होनेके लिये सभी बोध-कथा–

अचानक इतने घबराये क्यों लग रहे हो?

भवितव्यता

(श्रीकन्हैयासिंहजी 'बिशेन') गरुड़जीने उसे पहुँचाकर पुनः अपना आसन ग्रहण

देवताओं की महासभा आहूत की गयी थी। सभी लोग अपने-अपने वाहनोंसे पधार रहे थे। वाहन सभाकक्षके

बाहर अवस्थित थे। क्रमश: गरुड़, हंस, मयूर, उलूक और कपोत आदि आ चुके थे। इतनेमें यमराजका पदार्पण हुआ

कहा-यहाँ कबूतर बैठा था, कहाँ गया? दिखायी नहीं और वे अन्दर प्रवेश करने लगे। सहसा उनकी दृष्टि कपोतपर पड़ी और वे अन्दर आसनपर आसीन हो गये। पड रहा है। इसपर गरुडजीने कहा—महाराज, उसे तो मैं बहुत दूर पर्वतकी चोटीपर छोड़ आया हूँ। यमराजजीने

एकाएक यमराजको देखकर कपोतको भयावह लगा और वह घबडाया हुआ बेचैन हो उठा। उसकी इस स्थितिको देखकर गरुडने पृछा—मित्र, तुम भयभीत लग रहे हो।

कपोतने कहा—यमराजको सामने उपस्थित देखकर मेरा कलेजा काँप रहा है। उनकी लाल-लाल आँखें में भूल नहीं पा रहा हूँ और मुझे लगता है कि मेरी मौत अभी

और आज ही हो जायगी। इसी भयवश काँप रहा हूँ। यह सुनकर गरुड़जी हँसे और कहा—तुम इसकी चिन्ता न करो, आओ मेरी पीठपर सवार हो जाओ और

निमिषमात्रमें मैं तुम्हें साठ हजार योजन दूर मैनाक पर्वतकी चोटीपर पहुँचा दुँगा और किसीको पता भी नहीं चलेगा।

१. सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्विताः । मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः॥

और प्रकृतिके कार्योंमें सहयोग किया। इसके लिये मैं आपका आभारी हूँ। कहा गया है—

तुलसी जिस भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ। आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ॥

आपने उसे नियत स्थानपर पहुँचाकर नियतिकी व्यवस्था

यहाँसे वहाँ तुरन्त कैसे पहुँचेगा? क्या नियतिके विधि-

कबूतरकी मृत्यु बहुत दूर पर्वत-शिखरपर नियत है। यह

रात्रिके समय शुद्धासनपर उत्तराभिमुख बैठ करके एक

हजार जप करे और मालाको मस्तकके नीचे रखकर

वहीं सो जाय। ऐसा करनेसे निद्रा आनेपर सब कामोंको

सिद्ध करनेवाली महाशक्ति स्वप्नमें देववाणी (संस्कृतके

द्वारा) कुछ कहें तो उस कथनको तत्काल ही कागजपर

अंकित कर लेना चाहिये और अपने अभीष्टकी सिद्धि

कर लिया। सभाका समापन हुआ। सर्वप्रथम यमराजजी

निकले और उनके नेत्र कपोतको खोजने लगे। इसे देखकर

गरुड़जीने कहा-महाराज, क्या देख रहे हैं? उन्होंने

या असिद्धिको जान लेना चाहिये।

हँसते हुए कहा-गरुडजी! आपने तो मेरी चिन्ताको दूर कर दिया, जिसके लिये आप बधाईके पात्र हैं; क्योंकि

िभाग ९४

विधान मिथ्या हो जायँगे—यही मेरी चिन्ता थी। परन्तु

अहंकार कैसे मिटे ? संख्या ३] अहंकार कैसे मिटे ? साधकोंके प्रति-(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) मैं शरीर हूँ, शरीर मेरा है-यह मान्यता रखना ही शरीर रहँगा और न अभी वर्तमानमें मैं शरीर हैं। मैं इससे खास भूल है। मूल भूल है कि 'मैं शरीर हूँ'। आप बिलकुल अलग हूँ। इसकी पहचान क्या है कि मैं इसपर जरा विचार करो-शरीर मिला है। मिली हुई शरीरसे अलग हूँ ? यदि शरीरसे मेरी एकता होती तो चीज अपनी नहीं होती। अपनी चीज सदैव अपनी ही चाहे तो मरनेपर शरीर मेरे साथ चलता अथवा शरीरके रहती है, कभी बिछुड़ती नहीं, पहलेसे अन्ततक अपनी साथ मैं भी रहता। पर न तो मैं शरीरके साथ रहता हूँ ही रहेगी और जो मिली है, वह छूट जाती है, सदैव और न शरीर मेरे साथ जाता है। इस परिस्थितिमें शरीरके साथ नहीं रहती। ऐसी मिली हुई वस्तु 'मेरी' कैसे हुई? साथ मेरी एकता कैसे हुई? अर्थात् मैं शरीर कैसे हुआ? स्वयं पहले था और स्वयं पीछे रहेगा। बीचमें मकान और मैं अलग-अलग हूँ। मकानसे मैं बाहर शरीर मिला तो यह स्वयं शरीर कैसे हुआ? चला जाता हूँ तो मकान मेरे साथ नहीं जाता। मकान यहीं रहता है, मैं बाहर चला जाता हूँ तो इससे सिद्ध इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते। हुआ कि मैं मकानके साथ नहीं रहता, यानी मैं और एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥ मकान-ये दो हैं, एक नहीं। इसी प्रकार शरीर और (गीता १३।१) 'इदंता' से दीखनेवाले शरीरको क्षेत्र कहा है। मैं—ये दो हैं एक नहीं। ऐसा ठीक बोध होनेपर अहंकार इसको जाननेवालेको इसी श्लोकमें 'क्षेत्रज्ञ' कहा है। मिट जाता है और अहंकार मिटनेपर मैं और शरीर— इस वर्णनसे यह स्पष्ट है कि क्षेत्रज्ञ और क्षेत्र दो चीजें ये दोनों अलग-अलग दिखायी देते हैं। हैं। जैसे, मैं खम्भेको जानता हूँ, तो खम्भा जाननेमें में शरीर हूँ, शरीर मेरा है और शरीर मेरे लिये है— आनेवाली चीज हुई और मैं खम्भेको जाननेवाला हुआ। ये तीन खास भूलें हैं। न तो मैं शरीर हूँ, न शरीर मेरा जाननेवाला, जाननेमें आनेवाली वस्तुसे भिन्न होता है— ही है और न शरीर मेरे लिये ही है। मेरे लिये शरीर हो यह नियम है। मैं शरीरको जानता हूँ, इससे स्पष्ट हुआ ही नहीं सकता; क्योंकि मैं नित्य-निरन्तर रहनेवाला और कि शरीर मुझसे अलग है। हम यही कहते हैं—यह मेरा यह नित्य-निरन्तर बदलनेवाला है। यह शरीर बदल रहा पेट है, यह मेरा पैर है, यह मेरी गर्दन है, यह मेरा है, जा रहा है, वियुक्त हो रहा है प्रतिक्षण; यह मेरे लिये मस्तिष्क है, ये मेरी इन्द्रियाँ हैं, यह मेरा मन है, यह मेरी कैसे हो सकता है? कोई एक भी क्षण ऐसा नहीं है, बुद्धि है। अपनेसे अलगको ही 'मेरा' कहा जाता है। जिस क्षणमें यह शरीर वियुक्त न होता हो। अत: ये सबसे अलग हैं। वास्तवमें विचारा जाय तो मनुष्य मानता है कि जब शरीर मर जाता है, तब 'अहम्' यानी 'मैं' पन भी 'इदम्' ही है; क्योंकि जिस शरीरका वियोग होता है; इसलिये जन्मसे मृत्युतक प्रकाशमें संसार दिखायी देता है; उसी प्रकाशमें 'अहम्' हमारा रहा। यह बहुत स्थूल बुद्धिसे मान्यता है। बारीकीसे देखा जाय तो शरीर जो सौ वर्षतक रहनेवाला भी दिखायी देता है। जिस प्रकाशमें शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण इदंतासे दिखायी देते हैं, उसी सामान्य है, वह एक वर्षका बालक हो गया तो अब ९९ वर्ष प्रकाशमें अहं भी इदंतासे दिखायी देता है। दीखनेवाला ही रहनेवाला रहा। दृष्टि होती है कि बालक बढ़ रहा अपना स्वरूप कैसे हुआ ? वास्तवमें 'अहम्' भी अपना है, यह बात बिलकुल गलत है। बालक तो प्रतिक्षण मर रहा है। अपने भी सोचते हैं कि हम बढ रहे हैं, हम स्वरूप नहीं है। मैं शरीर नहीं हूँ—इस बातको दृढ़तासे मान लो। जी रहे हैं। यह बिलकुल झूठी बात है। सच्ची बात तो मैं न कभी शरीर था, न कभी शरीर हो सकता हूँ, न यह है कि हम मर रहे हैं, प्रतिक्षण मर रहे हैं! हम मानते

भाग ९४ हैं कि मरनेके बाद शरीरसे वियोग हो जाता है, पर आया। शरीरसे मेरापन मिटा है। भजन-ध्यान करनेसे वास्तवमें वियोग प्रतिक्षण हो रहा है, तो हरदम वियुक्त अन्त:करण शुद्ध हो गया। शुद्ध अन्त:करणमें यह ज्ञान होनेवाला शरीर हमारे लिये कैसे हो सकता है? हमारा जाग्रत् हुआ कि 'मैं शरीर नहीं हूँ तथा शरीर मेरा नहीं कैसे हो सकता है ? और हम उसके कैसे हो सकते हैं ? है।' आप ज्यों-के-त्यों हैं। आपके शरीर क्या काम अब विचार करें कि क्या मेरा पुरा आधिपत्य आया ? शरीरकी शुद्धि हुई। शुद्धि होनेसे मैंपन, मेरापन शरीरपर चलता है? अगर चलता है, तो इसको हम मिटता है। मैंपन और मेरापन यह अशुद्धि है। (गीता बीमार न होने दें, कमजोर न होने दें और कम-से-कम (५।११)-में श्रीभगवान्ने कहा है कि योगीलोग मरने तो मत ही दें। पर हमारा आधिपत्य इसपर नहीं अन्त:करणकी शुद्धिके लिये कर्म करते हैं। 'केवलै:' चलता। फिर शरीर हमारा कैसे हुआ? पद श्लोकमें आया है। 'केवलः' पद इन्द्रिय, मन, बुद्धि, बालकपनमें जो मैं था, वही अब भी हैं। अपना काया सबके साथ लगेगा। 'केवलेन कायेन, केवलेन होनापन निरन्तर वैसा-का-वैसा दीखता है, पर शरीर मनसा, केवलया बुद्ध्या, केवलैः इन्द्रियैः।' केवल बदलता है। बदलनेवाला शरीर 'मैं' कैसे हुआ? मैं कहनेका मतलब इनके साथ अपना सम्बन्ध न मानना नित्य-निरन्तर रहनेवाला, शरीर नित्य-निरन्तर ही है। इनके साथ अपनापन मानना ही अशुद्धि है। बदलनेवाला। वह शरीर मेरे लिये कैसे हुआ ? मेरे लिये रामायणमें '*ममता मल जरि जाइ'* ऐसा आया है। तो वही हो सकता है, जो सदैव मेरे साथ रहे। और मेरे ममतारूपी मल है। काम आ जाय। पर यह मेरे साथ रहता नहीं, तो यह हम बहुत वर्षोंसे जप-ध्यान करते हैं और मन शुद्ध नहीं होता, क्या कारण है ? उसमें मेरापन है, यह मान्यता मेरे लिये कैसे हुआ? शरीरकी संसारके साथ एकता है।-रखते हैं। यह मान्यता पकडी हुई है। मनको शुद्ध करना चाहते हो, पर मेरापन छोड़ते नहीं। मेरापन रखना ही *'छिति जल पावक गगन समीरा।'*—जिन पाँच तत्त्वोंसे यह संसार बना है, उन्हीं पाँच तत्त्वोंसे यह शरीर अपवित्रता है। जप-ध्यान अपने लिये मानते हो! ऐसा बना है। शरीर और संसारकी एक जाति है। यह शरीर मानते हो कि जप-ध्यान करें तो हमारा कल्याण होगा। संसारका एक अंग है। शरीर हमको मिला है संसारकी पर वास्तवमें नाम-जपसे, कीर्तनसे, भजन-ध्यानसे सेवाके लिये, तो अपने लिये शरीर कैसे हुआ? शरीर अन्त:करण शुद्ध होगा, तब यह बात समझमें आ जायगी कि ये 'मैं' नहीं, ये 'मेरे' नहीं हैं। हमको क्या निहाल करेगा? हम शरीरको अपना तथा अपने लिये न मानकर संसारका मानकर संसारकी सेवामें शरीर मेरा नहीं है, शरीर मैं नहीं हूँ, फिर आपके लगा दें। इस प्रकार संसारकी वस्तु संसारके काममें लगा लिये शरीर कैसे हुआ? आप तो शरीर-मन-बुद्धिसे दें तो इससे हमारा सम्बन्ध-विच्छेद हो जायगा, इससे सदैव अलग ही हैं। अपने लिये मानते रहनेसे सम्बन्ध माना हुआ सम्बन्ध टूट जायगा अर्थात् शरीरसे 'मैं-पन' जुडता है। परमात्माका हम चिन्तन करते हैं तो मन, बुद्धिसे ही चिन्तन करेंगे। मन-बुद्धि प्रकृतिके हैं कि मिट जायगा। आप एक शंका कर सकते हैं कि इस शरीरसे हम आपके ? तो भगवान्के चिन्तनमें आप पराधीन हो गये। प्रकृति 'पर' है, आप स्वयं 'स्व' हो। 'पर'का सहारा भगवन्नामजप करते हैं, इससे ध्यान लगाते हैं, चिन्तन करते हैं, इससे सेवा करते हैं तो यह शरीर किसके काम लेना पड़ा, तो आप पराधीन हुए। ध्यान करो तो जड़का आया ? यानी हमारे ही तो काम आया ? हम जप, ध्यान सहारा लेना पडेगा। समाधि लगाओ तो जडका सहारा लेना पड़ेगा। पर जड़के द्वारा चेतनकी प्राप्ति होती नहीं। करते हैं, तो भगवान्की प्राप्ति होगी, भगवान्के दर्शन होंगे; तो इस प्रकार शरीर हमारे काम आया। आप थोड़ा चेतनकी प्राप्ति जड़के त्यागसे होती है। जड़ताके त्यागसे गहरा विचार करें—वास्तवमें शरीर आपके काम नहीं चिन्मयतामें हमारी स्थिति होगी। जडताका आश्रय लेंगे.

संख्या ३] अहंकार वै	फ्से मिटे ? २१
*************************************	**************************************
जड़ताकी आवश्यकता समझेंगे तो जड़ चीजोंसे, शरीर	सप्तमी विभक्ति दी है। इसका क्या तात्पर्य है? ' पात्रे
आदिसे सम्बन्ध-विच्छेद कैसे करेंगे? जब इनका त्याग	च' में तो कम-से-कम सप्तमी नहीं कहनी चाहिये थी।
करनेसे ही कल्याण होगा, तो ये हमारे क्या काम आये?	'पात्राय' होना चाहिये, सप्तमी कैसे हो गयी वहाँ?
इनका त्याग ही हमारे काम आता है। वह आज ही कर	इसका तात्पर्य क्या है, पूरा तो भगवान् जानें और
दें तो कितना अच्छा होगा।	व्यासजी महाराज जानें, अपनेको पता नहीं। हम तो कोई
ठीक तरहसे समझें इस बातको कि शरीर हमारे	विद्वान् हैं नहीं, परंतु हमारी धारणामें 'देशे काले च
लिये कैसे हुआ ? इसलिये भजन-ध्यान करो, दान-पुण्य	पात्रे च' कहनेमें 'देशे काले प्राप्ते सित' अर्थात् देश,
करो, सेवा करो, सब कुछ करो शरीरसे, पर अपने लिये	काल और पात्रके प्राप्त होनेपर—'अनुपकारिणे दीयते'
नहीं; तो ये सब चीजें कल्याण करनेवाली हो जायँगी।	है। 'अनुपकारिणे' का अर्थ यह है कि (जिसने
कब? जब इस भावसे करोगे कि ये सब मेरे नहीं हैं,	हमारा) न तो उपकार किया है, न उपकार करता है और
मेरे लिये नहीं हो सकती हैं। प्रश्न उठता है कि फिर	न हमें उससे उपकारकी आशा है। उपकारीको दिया
करते क्यों हो ? दूसरोंसे हमने लिया है—इसलिये। शरीर	जाय तो वह सात्त्र्विक दान नहीं होगा, वह दान राजस
भी दूसरोंसे मिला है, अन्न-जल दूसरोंसे मिलता है, हवा	होगा। 'यत्तु प्रत्युपकारार्थम् '' आदि कहा है, जो
भी हमारे जीनेके लिये मिलती है। राह, सड़क औरोंसे	राजस हुआ; क्योंकि दानसे सम्बन्ध जोड़ लिया;
मिली है, छाया, मकान सब चीजें औरोंसे मिली हैं।	रागात्मक सम्बन्ध हो गया और 'रजो रागात्मकं
मिली हुई चीज जिनसे मिली है, उनकी सेवामें लगा देना	विद्धि' होता है। राग क्या है? सम्बन्ध जोड़ना है।
है कर्जा उतारनेके लिये। आगे कर्जा लेना नहीं है।	अत: उपकारकी आशा रखकर देना सात्त्विक दान नहीं
अपना मानकर अपने लिये चाहते रहनेसे कर्जा चढ़ता	है। वह बाँधनेवाला दान है। यद्यपि भगवान्ने गीता
रहेगा। इसलिये नया कर्जा करना नहीं है।	(१७।२०)-में वर्णित दानको सात्त्विक दान कहा है,
शरीर हमारे काम आ जाय, यह इच्छा रहेगी, तो	परंतु वास्तवमें यह दान नहीं, यह त्याग है; क्योंकि यह
यह आपके कैसे काम आयेगा? आप चेतन हैं, जड़	देश, काल और पात्रके प्राप्त होनेपर, अपना सम्बन्ध न
शरीर आपके कैसे काम आयेगा? तो हम क्या करें?	रखते हुए दिया जाता है।
जड़तासे माना हुआ सम्बन्ध है। उस सम्बन्धको	ऐसे ही जप–ध्यानका सम्बन्ध भी हमारे साथ न
छुड़ानेके लिये सेवा करें, भजन-ध्यान करें, जप करें,	रहे। सेवाका भी सम्बन्ध हमारे साथ न रखें। यदि सेवा
समाधि लगायें; परंतु अपने लिये नहीं। अपने लिये मानते	करके हम समझते हैं कि हमने बड़ा काम किया तो
रहनेसे व्यक्तित्व बना रहता है। श्रुतियोंमें 'ब्रह्मणे	गलती करते हैं। हमारे पास जो शक्ति है, यह समष्टिकी
स्वाहा इदं न मम' आता है। 'इदं न मम' पद देनेका	शक्ति है; समष्टिसे अधिक या अलग कोई योग्यता या
तात्पर्य है कि यह हिव हमारे लिये नहीं है अर्थात् यज्ञके	शक्ति आपके पास है क्या? विद्या, बुद्धि, योग्यता कुछ
साथ अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर देना। श्रीगीताजीमें भी	भी परिस्थिति जो आपको प्राप्त है, वह आपको
'दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले	समष्टिसे मिली है। समष्टिकी चीज समष्टिकी सेवामें
च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥' (१७।२०)	लगा दी तो क्या अहसान किया? उसीकी चीज उसीके
इस श्लोकमें 'अनुपकारिणे' पद देकर अपने लिये	काममें लगा देना ईमानदारी है। अपने लिये लगाते हो
किंचिन्मात्र भी न चाहनेका लक्ष्य कराया है।	तो अहंकार आयेगा। मैंपन है, तो मेरापन आयेगा, मेरे
इस श्लोकपर जरा विचार करें। आपको व्याकरणकी	लिये आयेगा।
एक आश्चर्यकी बात बताता हूँ। 'अनुपकारिणे' पदमें	न तो यह मैं हूँ, न मेरा है, न मेरे लिये है। 'यह'
चतुर्थी विभक्ति दी है और 'देशे काले च पात्रे'में	करके जिसको कहते हैं, वह 'मैं' कैसे हुआ ? 'यह' 'मैं'

नहीं होता। 'मैं' होता है, वह 'यह' नहीं होता। शरीर यह शिष्य दो हुए। अब तीसरा दोनोंका आपसका सम्बन्ध है, मन यह है, बुद्धि यह है, प्राण यह है। मैंपन यह है। तो हुआ। यह सम्बन्ध एक अलग सत्ता हो गया। यह ये सब हमारा स्वरूप कैसे हुए? न तो मैं हूँ और न ये मेरे सम्बन्ध ही एक आफत हो गया। यह सम्बन्ध ही हैं। खुब सोचो, इसे समझनेके लिये। जन्म-मरणका कारण है। अत: जड़तासे सम्बन्ध-आपने किसीको पढाया। किसीको आपने शिष्य विच्छेद जल्दी-से-जल्दी कर लेना चाहिये। जडतासे सम्बन्ध-विच्छेद होना ही अहंकारका मिटना है। बनाया। गायत्री-मन्त्र दिया आपने, तो वह आपका शिष्य हो गया और आप उसके गुरुजी हो गये। गुरु और नारायण! नारायण!

बोध-कथा—

(डॉ० श्रीमती पुष्पारानीजी गर्ग)

चार मित्र

चार मित्र थे। एक ब्राह्मण था, एक क्षत्रिय, एक शक्तिकी सहायतासे उसकी बाहुओंमें प्राण फूँके। अब ब्राह्मणने अपने ब्रह्मज्ञानके बलपर उसके मस्तिष्कमें वैश्य और एक शुद्र। चारोंमें इतना प्रेम था, जैसे एक

प्राण, चार तन हों। चारों सदा साथ रहते, परदेश भी जाते तो एक साथ।

ब्राह्मण सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञाता था। क्षत्रिय शस्त्र-विद्यामें पूर्ण पारंगत था। वैश्यको व्यापारकी एक-एक

बारीक कला ज्ञात थी। शूद्रमें सभीके प्रति सहज सेवा-

भाव था। न किसीमें अहंकार था, न हीनभाव। एक बार वे चारों घुमते-घुमते दुसरे नगरमें पहुँच

गये। वहाँका राजा सन्तानहीन था। सन्तानकी आशा करते-करते वह वृद्ध हो चला। उसे अब किसी योग्य

उत्तराधिकारीकी तलाश थी। राजाके सिंहासनके सामने एक सुन्दर-सी मिट्टीकी प्रतिमा रखी रहती। राजा स्वयं कलाकार था। उसने स्वयं ही गढ़कर यह प्रतिमा तैयार

की थी। वह प्रतिमा सदा उसके सामने रहती और वह अक्सर सोचता 'काश! इस प्रतिमामें कोई प्राण फूँक

देता तो यह सजीव हो उठती।' वे चारों मित्र एक दिन घूमते-घूमते उस राजाके

दरबारमें जा पहुँचे। चारों राजाको झुककर प्रणाम कर रहे थे कि उनकी दृष्टि उस प्रतिमापर पड़ी। प्रतिमाका

अनुठा सौन्दर्य उन्हें आकर्षित करने लगा। चारों विचार करने लगे 'क्या ही अच्छा होता कि यह प्रतिमा सजीव

प्राणशक्ति आरोपित की। वैश्यने उसके हृदयप्रदेशमें

हो उठती।' तभी शूद्रने अपनी इच्छाशक्तिसे उसके पैरोंमें

हैं, हम एक-दूसरेके बिना अधूरे हैं।' राजाने कहा, 'फिर आप ही निर्णय करके बतायें कि मैं किसे अपना उत्तराधिकारी घोषित करूँ?'

चारों मित्र कहने लगे, 'महाराज! हममेंसे किसीको भी राज्यका मोह नहीं है, आप हम चारोंकी प्रतिनिधिरूप इस प्रतिमाको ही अपना उत्तराधिकारी बना लें, हम

प्राणोंका प्रवेश कराया। इतनेमें ही वह मिट्टीकी प्रतिमा

जो अबतक निर्जीव खड़ी थी, एक सुन्दर सर्वगुण-

सम्पन्न नवयुवकके रूपमें सजीव होकर सामने खड़ी हो

गयी। सहसा यह चमत्कार देख राजा अपार हर्षसे झूम

उठा। उसका ध्यान उन चारों मित्रोंपर गया। उसने उन्हें

अपने पास बुलाकर कहा, 'आप चारोंमेंसे जिसने भी इस

प्रतिमामें प्राण डाले हैं, मैं उसे अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता हूँ।' ब्राह्मण विनम्रतासे बोला, 'महाराज!

हम चारोंमें कोई अलग नहीं है, हम चार शरीर एक प्राण

चारोंने समानरूपसे प्रयत्न करके इस प्रतिमाको सजीव बनाया है। इस प्रतिमाके रूपमें हम चारों आपके सामने

उपस्थित रहेंगे, जबतक आपके राज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र प्रेम एवं सद्भावसे रहेंगे, तबतक यह प्रतिमा सजीव रहेगी।' राजाने प्रसन्न होकर अपने

िभाग ९४

उत्तराधिकारीका राज्याभिषेक किया। तभी सबने देखा कि उन चारों मित्रोंके नेत्रोंसे प्रकाशकी किरणें निकलीं

चेमामखUisiत्ता Dिब्रिट्सारिश्वित्रिरिं अभागेड असाई. कुल्रिसि विश्वित्रिस्त निर्मा श्रीक्रिसिं प्रिकारिक निर्मा विश्वित्र स्थानिक असाई स्थानिक स्थानिक

'लला फिर आइयो खेलन होरी' संख्या ३] होलीपर विशेष 'लला फिर आइयो खेलन होरी' (श्रीअर्जुनलालजी बन्सल) भयंकर सर्दी, ठिठुरन और गगन-मण्डलसे झर-वृन्दावन आदि ब्रजक्षेत्रमें श्रीराधारानीके संग होली झर बहते ओसके शीतल कणोंको अपने आँचलमें समेटे खेलकर श्रीकृष्ण अपने भक्तोंको आनन्दित करते हैं। माघमास विदा हुआ। रंग-रँगीले फाल्गुनमासका आगमन आइये, श्रीराधा-कृष्णकी होली-लीलाके दर्शन हुआ। वनप्रदेशमें मयूर नृत्य करने लगे, कदम्ब वृक्षकी करने श्रीवृन्दावन चलते हैं। इस लीलाका सजीव वर्णन करते हुए सूरदासजीने लिखा है— डालपर बैठी कोयलके कण्ठसे सुरीले गीत सुनायी देने वृन्दावन श्याम मची होरी। लगे। यमुनाके तटपर मृगोंके झुण्ड कुलाँचे भरने लगे। बाजत ताल मृदंग झांझ ढप, बरसत रंग उड़त रोरी॥ शीतल मन्द सुगन्धित वायुके झकोरे मानव-मनको कित ते आये कुँवर कन्हैया, कित तैं आई राधा गोरी। आनन्दित करने लगे। पुष्प-वाटिकाओंमें खिले रंग-नन्दग्राम ते आये कन्हैया, बरसाने ते राधा गोरी॥ बिरंगे और सुगन्धित पृष्पोंपर भ्रमरोंके समृह गुंजारकर कौनके हाथ कनक पिचकारी, कौनके हाथ अबीरकी झोरी। अपना हर्ष व्यक्त करने लगे। चारों ओर हर्ष और कृष्णके हाथ कनक पिचकारी, राधाके हाथ अबीरकी झोरी॥ उल्लासकी बयार बहने लगी। अबीर गुलालकी धूम मची है, फेंकत हैं भरि भरि के झोरी। सूरदास छवि देख मगन भये, राधे श्याम जुगल जोरी॥ ऐसे मनमोहक वातावरणमें ब्रजप्रदेशमें होलीकी श्रीवृन्दावनमें होलिकोत्सव प्रारम्भ हो गया, अनेक मादकता सबसे रंगीन महोत्सवके रूपमें चहुँ ओर छा प्रकारके वाद्यवृन्द मुखरित हो उठे। नन्दग्रामसे श्रीकृष्ण जाती है। इस उत्सवका शुभारम्भ होता है, जब सम्पूर्ण अपनी स्वर्णकी पिचकारीमें केसर रंग भरकर तथा प्रदेशमें कहीं ब्रजबालाएँ, कहीं ग्वाल-बाल और कहीं बरसानासे श्रीराधारानी अपनी झोलीमें अबीर-गुलाल गोप-ग्वाले नाचते-गाते होलीके संगीतमय वातावरणमें भरकर वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं। जैसे ही दोनोंका मादकता और मस्ती भर देते हैं। इस समय सारे ब्रजवासी आमना-सामना होता है, कान्हाने अपनी पिचकारीके लोकमर्यादा, पारम्परिक रीति-रिवाजों तथा अपनी प्राचीन रंगसे श्रीराधारानीको सराबोर कर दिया और प्रियाजीने संस्कृतिको सँजोकर मस्तीभरे संसारमें विचरण करने अपने दोनों हाथोंसे गुलाल-अबीरकी उनके ऊपर वर्षाकर लगते हैं। आनन्दरूपी अथाह सागरकी उत्ताल तरंगें उन्हें लाल रंगसे रँग दिया। श्रीराधा-माधवकी इस दिव्य जाति, धर्म और अमीरी-गरीबीके सारे बन्धन तोड़कर लीलाके दर्शनकर सारी सृष्टि भाव-विभोर हो उठी। समाजको प्रेमके रंगोंसे सराबोरकर एकाकार कर देती हैं। इस पर्वपर ब्रजबालाएँ लोक-लाज त्यागकर अपने कान्हाकी लीला-स्थली ब्रजमण्डलमें इस उत्सवका हर कान्हाके साथ होली खेलनेको आतुर हो उठती हैं। ऐसी रंग निराला होता है। ही एक मनोहारी लीलाका सजीव वर्णन करते हुए बसन्त ऋतुके आगमनके साथ ही भगवान् श्रीकृष्ण श्रीकृष्णभक्त रसखानने लिखा है-और उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधारानी दिव्य स्वरूप रसखानि गुलालकी धृंधरमें, ब्रजबालनकी दुति यों दमकै। धारणकर आज भी ब्रजमें ग्वाल-बाल और सिखयोंके मनो सावन माँझ ललाई के माँझ, चहुँ दिसि तें चपला चमकै।। संग होलीका आनन्द लूटने पधारते हैं। श्रीराधारानी जब मिलि खेलत फाग बढ़्यौ अनुराग, सुराग सनी सुख की रमकै। होली खेलती हैं, सारा आकाश गुलालके रंगोंसे ढक कर कुंकुम लै करि कंजमुखी, प्रिय के दूग लावन कौं धमकै।। जाता है और श्रीकृष्णकी पिचकारीसे छूटे केसरके रंगसे इस प्रकार श्रीराधारानी अपने मोहनके मुखकी ओर धरतीमाता अपना शृंगार करती हैं। नन्दग्राम, बरसाना, गुलाल फेंककर अतिशय आनन्दका अनुभव कर रही हैं। गोकुल, महावन, गोवर्धन, फालैन, दाऊजी, मथुरा और ऐसे ही उत्साहके साथ सम्पूर्ण ब्रजमण्डलमें होलीकी

******************************* धूम मची है। श्रीकृष्णको जहाँ भी सखियाँ मिल जाती मधुर स्वर और श्रीराधाके पायलकी झंकार दोनोंने हैं, वे उन्हें जबरदस्ती पकड़कर नखसे शिखतक रंगोंसे मिलकर होलीकी मस्तीमें चार चाँद लगा दिये। दोनों भिंगोकर ही छोड़ते हैं। पक्षोंमें रंगोंका खेल प्रारम्भ हो गया। श्रीकृष्णकी ऐसी जोरा-जोरीसे तंग आकर वे लाल गुलाल सों लीन्हीं मुठी भर, लालके भालकी ओर चलाई। सिखयाँ श्रीराधारानीके पास जाकर अपनी व्यथा सुनाकर या दूग मूँदै इन्हें चितये, इन भेंटि इतै वृषभानु की जाई॥ उनसे बदला लेनेका आग्रह करती हैं। श्रीराधाजी तो स्वयं ही इस अवसरकी प्रतीक्षामें थीं। अपनी सखियोंको दयौ आज्ञा वृषभानु कुमारी, आय गई सिगरी ब्रजनारी। आश्वस्त करते हुए कहने लगीं, तुम सब भरपूर मात्रामें सबन मिल पकड़े कृष्ण मुरारी, सखन्ह पर हल्ला खूब मचायौ है।। रंग और गुलालकी व्यवस्था करो और मैं श्रीकृष्णको पकड़ो री ब्रजनार कन्हैया, होली खेलन आयौ है। बरसाना बुलानेका प्रबन्ध करती हूँ। श्रीराधारानीने अपने पीताम्बर मुरली लई छिनाय, श्याम को गोपी वेष बनाय॥ पिता श्रीवृषभानुजीके माध्यमसे श्रीकृष्णको बरसाना कंचुकी कटि लहँगा पहिराय, किशोरी मंद मंद मुस्काय। आकर होली खेलनेका निमन्त्रण भिजवा दिया। बरसानाका लला को घूँघट मार नचायौ है॥ निमन्त्रण पाकर श्रीकृष्ण अपने बाल सखाओंके संग जा श्रीराधारानीका आदेश मिलते ही सारी सिखयोंने पहुँचे बरसानाकी तलहटीमें पीली पोखरपर। वहाँ पहुँच श्रीकृष्णको चारों ओरसे घेरकर पकड लिया। इनके सबने स्नान किया और श्रीराधा और सखियोंके संग हाथसे मुरली और पीताम्बर छीनकर गोपी वेष धारण होली खेलनेका सुअवसर जान अपना शृंगार करने लगे। करा दिया, इनके मुखड़ेको घूँघटसे ढँककर नचाने लगी कान्हाने शीशपर पीली पगडी, भालपर चन्दनका हैं। आज ये गोपियाँ अपने साथ की गयी जोराजोरी और तिलक, कानोंमें कुण्डल, गलेमें वैजयन्ती माला, हाथमें छेड़छाड़का बदला लेनेपर उतारू हैं। कन्हैया बार-बार कनककी पिचकारी, पैरोंमें घुँघरू बाँधे तथा सखाओंके उन गोपियोंसे छोड़ देनेका आग्रह करते हैं, परंतु उन्होंने साथ मुखसे सिंघा-शंख बजवाते और हाथोंसे लाठी पटकाते तो अपनी गतिविधि और तेज कर दी। जा पहुँचे श्रीराधारानीके महलकी पौरमें, उधर श्रीराधा एक सखी उन्हें खुले आँगनमें ले गयी, वहाँ रानी और उनकी सिखयाँ सोलहों शृंगारसे युक्त वहाँ तैयार किसीने दुलारा, किसीने पुचकारा, कोई गालोंपर चिकोटी खड़ी थीं। श्रीराधाका अभूतपूर्व शृंगार देख श्रीकृष्ण उनपर भरने लगी, कोई उनके गालोंपर रोली लगाने लगी, मोहित हो उठे। होते भी क्यों न, उनके माथेपर बिन्दी, किसीने माथेपर काजलकी रेखा खींच दी, कोई उसके कानोंमें मोतियोंके झुमके, वक्षःस्थलपर मोतियोंका हार, घुँघराले बालोंमें हाथ फेरने लगी। आज श्रीराधारानी अँगुलियोंमें स्वर्णकी अँगूठियाँ, कमरमें स्वर्णकी करधनी, और उनकी सिखयाँ होलीके इस आनन्दको जी भरकर पैरोंमें चाँदीकी पायजेब, उनमें जडे सुन्दर घुँघरू, नयनोंमें भोगना चाहती हैं, इसी उद्देश्य से, काजलकी पतली-पतली रेखाएँ देख मोहनका उनकी फाग के भीर अभीरन में, गिह गोविन्द लै गई भीतर गोरी। छविपर मोहित हो जाना स्वाभाविक ही तो है। भाई करी मन की पद्माकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी॥ श्रीराधाने नयनोंके संकेतसे कान्हाको रँगीली गलीमें छीनि पितम्बर कम्मर से, सु बिदा दई मीड़ि कपोलिन रोरी। आनेका निमन्त्रण दे दिया। तुरंत ही नाचते-गाते धूम नैन नचाइ कही मुसकाय, लला फिर आइयो खेलन होरी॥ मचाते कान्हा जा पहुँचे रँगीली गलीमें। दोनोंका जैसे ही इस प्रकार गोपियोंने अपनी समस्त मनोकामनाएँ आमना-सामना हुआ, श्रीराधाकी पायलके घुँघरू मुखरित पूर्णकर श्रीकृष्णको ससम्मान अपने गाँवकी ओर यह कहते हो उठे, फिर कान्हाकी वंशी कैसे मौन रहती, उसके हुए विदा कर दिया कि 'लला फिर आइयो खेलन होरी'।

भाग ९४

संख्या ३] परिवारका स्वरूप परिवारका स्वरूप (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ) जिस प्रकार अच्छी फसल पानेके लिये हमको महाराजने मेरी माताको दिव्य भक्ति-ज्ञानका उपदेश अच्छी भूमि, अच्छा बीज, अच्छी जलवायु तथा उचित दिया था, माँ तो स्त्री होनेके कारण तथा समयाधिक्यके समयके साथ शुभ-संकल्पवान् समर्पित-श्रमाराधक कारण भूल गयी, परंतु मैं नहीं भूला— व्यक्तियोंकी आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार तत्तु कालस्य दीर्घत्वात् स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे। अच्छे सज्जन व्यक्तियोंको पानेके लिये हमें अच्छे ऋषिणानुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात् स्मृतिः॥ संस्कारवान् माता-पिता, अच्छे वातावरणवाले परिवार, (श्रीमद्भा०७।७।१६) मातृगर्भकी शिक्षा-संस्कारके विषयमें श्रीशुकदेवजी अच्छे संस्कार देनेवाले शिक्षक, अच्छे लोगोंका समाज तथा अच्छा विशुद्ध सद्विचार, सदाचारयुक्त वातावरण स्वयं परम प्रमाण हैं। अधिक क्या कहें, शिवाजीके आवश्यक होगा। किसी महापुरुषने बहुत अच्छी बात विषयमें सुना जाता है कि माता जीजाबाईजी उनको कही-यदि आप एक दशककी योजनामें सफलता पाना विविध पुराणोंकी कथा सुनाती थीं तथा भारतीय संस्कृतिकी चाहते हैं तो अच्छी फसलें लगाओ। यदि आप सौ वर्ष रक्षा, गोरक्षा, हिन्दुत्व-रक्षा, देव-प्रतिष्ठाकी स्थापनाहेत् (शताब्दी)-के लिये कोई योजना चाहते हैं तो आप उस अजन्मे शिशुको प्रबोधित करती थीं, जिसका श्रेष्ठ छाया तथा फल देनेवाले महावृक्ष लगाओ और परिणाम आपके सम्मुख है। शिवाने कभी अपनी माँका यदि आप सहस्राब्दियोंको प्रभावित करनेके लिये कोई वचन नहीं टाला तथा तुलजा भवानी और माता योजना बनाना चाहते हैं, तो आप अच्छे संस्कारवाले जीजाबाईजीमें अभेद मानकर सदा उनके चरण-वन्दन मनुष्योंसे सजे परिवारोंका सुन्दर समाज बनानेपर विचार करके ही दिवसका आरम्भ किया। असंख्य उदाहरण हैं, कीजिये। अच्छे बालक ही अच्छे नागरिक बनेंगे तथा जिनके द्वारा यह विषय समझा जा सकता है, अत: जब बालक माताके गर्भमें हो तब माताको पौष्टिक सात्त्विक समाज और राष्ट्रको उन्नतिके शिखरपर ले जा सकेंगे। जन्मसे पूर्व-इसकी शुरुआत तबसे करनी होगी पवित्र आहार, सात्त्विक पवित्र वातावरण मिले, जिससे जब पिताका तेज माताके गर्भमें स्थापित होनेका मुहूर्त माता प्रसन्न रह सके; क्योंकि उस समय माता रोती है, होगा। भगवत्स्मरणपूर्वक इस गर्भाधान-संस्कारको भी दुखी रहती है तो बालकका विकास प्रभावित होता है। हम वासनापूर्तिका साधन न मानकर उपासनाका अंग माँ अधिक न सोये, अधिक न खाये, लंडे नहीं, बुरा न बना सकते हैं। समाज-सेवाके महायज्ञमें अपनी पवित्र सोचे, भगवत्स्मरण करे। जन्मके उपरान्त—आप ये मत समझना कि शिश् आहृति दे सकते हैं। ये विषय समझनेके लिये हमें अपनी छोटा है, वह सुनता नहीं, समझता नहीं, जानता नहीं। समझको श्रद्धासिक्त एवं उदार बनाना होगा। इतिहासकी घटनाओंको सही परिप्रेक्ष्यमें लेते हुए वैज्ञानिक तथा आप ही सोचो जो शिशु गर्भवासमें सबकुछ जान सकता व्यवहारिक दृष्टिकोण विकसित करना होगा। प्रसिद्धि है है, वह जन्मके उपरान्त क्यों नहीं जानेगा? हाँ! वह कि अभिमन्युने चक्रव्यूहका भेदन करना माता सुभद्राके जानकर, सुनकर, देखकर, समझकर भी स्पष्ट प्रतिक्रिया गर्भकी पाठशालामें ही सीखा था। योगीन्द्रवृन्द-वन्दित नहीं कर पाता और यदि अपने ढंगसे वह संकेत करता भी है तो हम नहीं जान पाते, परंतु छोटे-से-छोटा पादारविन्द ज्ञानादित्य श्रीअष्टावक्रजी महाराजको भी समग्र वेदराशिका बोध मातृगर्भकी पाठशालामें ही प्राप्त बालक भी अनुकूलता पाकर मुसकराता है, किलकारी हुआ था। भक्तराज प्रह्लादजी महाराजने तो स्वयं स्वीकार भरता है, हाथ-पैर हिलाता है, नजरें झुकाता है अथवा किया कि जब मैं माताके गर्भमें था, तब श्रीनारदजी बहुत गौरसे एकटक आपको निहारता रहता है। यह वह

भाग ९४ समय है, जब बालकका चित्त आँखोंके पवित्र कैमरेसे परन्तु स्वधर्म नहीं त्यागते थे। जोरावर सिंह तथा फतेह आपकी फोटो खींच रहा है। प्रतिकूलता पानेपर वह रोता सिंह, गुरु गोविन्द सिंहके दो पुत्र, ५-७ वर्षके बालक मृत्युको गले लगाते हैं, दीवारमें चुनवा दिये जाते हैं, परंतु है। अनजाना व्यक्ति पाकर वह असहज होता है। हे सुभद्र जनो! समझो, यह जीवन-निर्माणका सर्वाधिक स्वधर्म नहीं त्यागते। पाँच वर्षका ध्रुव वनमें जाकर महत्त्वपूर्ण समय है। इस समयमें बालककी उपेक्षा न अभयत्वके साथ तप करके परमात्माको पा लेता है। करो। जैसे-जैसे बालक बड़ा होता जाय, उसको अच्छे पाँच वर्षका निचकेता यमराजके घर पहुँचकर तीन संस्कार दिये जायँ। माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दिनतक भूखा-प्यासा रहता है और मृत्युके देवता यमसे दादी, ताऊ-ताई आदि सभी स्वजन-परिजन ऐसा मुलाकात करके ब्रह्मविद्या पा लेता है। तब फिर आज हम क्यों नहीं पा सकते ? 'वीर बालक', 'भक्त बालक' पारिवारिक वातावरण दें कि जिससे वह कुसंगकी ॲंधियारी रातमें राह भटकनेपर भी विचलित न हो सके। आदि पुस्तकें उनको पढ़नेके लिये दें। परिणाम चाहे जो अपना सत्पथ न छोड़ सके। बालकको अपने धर्म, हो, हमें प्रयास करने ही चाहिये। घरकी दीवारोंपर चित्र कुल, जाति, राष्ट्रकी समझ हो, उसे गौरव हो। वह हों, परंतु केवल उनके ही जिनका चरित्र वन्दनीय हो, हीन भावनाका शिकार न बने। बालकोंको स्पष्ट बताया जिनके जीवन-आलोकसे समाजको दिशा प्राप्त हुई हो। जाय कि— आजके समयमें सर्वाधिक आवश्यकता है कि १- क्या करें, क्या न करें। माता-पिता, घरके बड़े लोगोंके बीच असामंजस्य, वैचारिक मतभेद, असहमित हो तो कोई बड़ी बात नहीं २- क्यों करें, क्यों न करें। ३- लाभ क्या है, हानि क्या है। है, परंतु वह मतभेद मनभेद न बने। असहमित कलहका ४- कब करें, कब न करें। रूप धारण न कर ले। हर समय की 'तू-तू', 'मैं-मैं' ५- कैसे करें, कैसे न करें। से बच्चोंको विरासतमें विषाद, विवाद, बिखराव, बेचैनी ६- कहाँ करें, कहाँ न करें। तथा आक्रोश मिलता है, जिससे उनके अन्दर विचित्र ७- उचित क्या है, अनुचित क्या है। असिहष्णुताभरी चिड्चिड़ाहट घर कर लेती है, फलत: ८- किसका संग करें, किसका न करें। बालक गलत संगतिमें पड़ जाता है; दुर्व्यसन, दुर्गुण तथा ९- मित्र कैसा हो, कैसे लोगोंकी मित्रता हानि-दुर्जनोंके संगसे जीवनको विनाशके पथपर डाल लेता है। कारक है। जो असहमतिके विषय हों, उनको शान्तिसे, ठंडे दिमागसे मिल-बैठकर निपटा लेना चाहिये। १०- हमारे जीवनका आदर्श कौन होना चाहिये? देखो भाई! ये सच्चाई है, विवादकी जडमें जैसे—भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, आचार्य शंकर, तुच्छातितुच्छ कारण मिलेगा 'अहंकार' या 'मैं'। बस महारानी लक्ष्मीबाई, मीराबाई हमारे आदर्श होने चाहिये, इसी 'मैं' से आक्रान्त व्यक्ति 'जर जोरू जमीन' का बहाना करके बातका बतंगड़ बना लेता है, जबकि न कि अन्य कोई। सभी ये बात जानते हैं कि संसारका एक कण भी साथ सच्चरित्रताका, सदाचारका, सद्व्यवहारका भाव बच्चोंमें आये, वे समाजको प्रकाश देनेलायक बन जानेवाला है नहीं। इसीलिये भाई! जिन बातोंमें हम सकें-ऐसा प्रयास करें। हमारे बालक कायर-भीरु न एक नहीं हो पाते, उनको किनारे करके घरमें, संस्थामें बनें। उनके अन्दर सत्य-न्याय-सिद्धान्तके प्रति सम्मानका शान्ति बनाये रखें। संसारभरकी सम्पत्ति भी जाती हो भाव हो। उन्हें बताया जाय कि हमारे पूर्वज चोटी-तो जाय, परंतु मनकी शान्ति न जाने पाये। मनकी जमिंग्राक्षीगंह्याके Piहित्वप्रतिः हिन्द्रभारति क्षेत्र स्वर्धि haस्मान्त्र । अस्प्रति हिन्द्रभग्निम् अस्ति हिन्द्रभग्निम् अस्ति हिन्द्रभग्निम् अस्ति हिन्द्रभग्निम् अस्ति हिन्द्रभग्निम् अस्ति हिन्द्रभग्निम् अस्ति । संख्या ३] दुढ इच्छाशक्ति जंगलमें, किसी झोपडीका जीवन भी आनन्द दे सकता जय-जयकारसे अब जी ऊब गया है। हे देव! सब है और यदि मनको चैन नहीं है तो भव्य भवन, कुछ ले लो, मेरा वही निश्छल निष्कपट बचपन लौटा आज्ञाकारी सन्तान, सेवापरायण सेवक, मनोनुकूल दो, जब मैं केवल और केवल आपका ही स्मरण करता जीवनसाथी, सामाजिक प्रतिष्ठा, उन्नतिशील व्यापार, था। आपकी चाहतमें जिसने शिर कटानेमें संकोच नहीं सुन्दर स्वस्थ शरीर तथा अपराजेय व्यक्तित्व भी किसी किया, वह रावण आज संसारमें उलझ गया है। कामका नहीं है। आपने कभी सोचा रावणके विषयमें? कदा निलिम्प-निर्झरी-निकुंज-कोटरे वसन् नहीं न! रावणके पास दुनियाकी दृष्टिसे कोई कमी नहीं विमुक्त-दुर्मतिः सदा शिरःस्थमञ्जलिं वहन्। है। सब कुछ भरा-पूरा है। सब दृष्टिसे रावणका विलोल-लोल-लोचनो ललाम-भाललग्नकः मुकाबला कोई कर नहीं सकता। ज्ञान में, विज्ञानमें, शिवेति मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम्॥ वीरतामें, धीरतामें, युद्धमें, बुद्धिमें; जिसकी प्रसन्नता (शिवताण्डवस्तोत्रम्) अस्तु! हमारे घरका वातावरण ऐसा हो, जहाँ पानेको लोकपाल-दिकुपाल तरसते हों, जिसके क्रोधसे चराचर कॉॅंप जाते हों, रहनेके लिये विशुद्ध स्वर्णका शान्ति, सादगी, सदाचार, सद्विचार, सद्भावके साथ-घर ही नहीं महादुर्ग हो। एक लख पूत, सवा लख साथ जीवनको समाजहितके लिये, राष्ट्रहितके लिये नाती हों, परंतु वह रावण भी जब कभी अपने अन्दर सदुपयोगी बनानेका उत्साहपूर्ण भाव बच्चोंके मन-झाँकता है तो काँप जाता है, अन्दरके खोखलेपनको मस्तिष्कमें प्रतिष्ठित हो। व्यर्थकी दिखावट, सजावट देखकर। रोने लगता है, भगवान् शिवसे प्रार्थना करता तथा बनावटमें, तडक-भडकमें बालक न फँसें। है-हे महादेव! मेरी जिन्दगी तबाह हो गयी है, वह सादा जीवन उच्च विचार। दिन कब आयेगा, जब मैं गंगाके किनारे पेड़ों और सादा भोजन पवित्र आचार। झाड़ियोंके झुरमुटमें अकेला बैठा-बैठा अपने अहंकारको, सादा वस्त्र उज्ज्वल चरित्र। अपनी पापिनी बुद्धिको त्यागकर अश्रुप्रवाहके साथ मधुर सत्य सरल वाणी, निष्कपट व्यवहार। आपका 'शिव-शिव' नाम-जप करता रहूँगा। हे शिव! बच्चोंकी जिज्ञासाको दबाया न जाय, अपित् अब इस बाहरी आडम्बरसे, बनावटी संसारकी बनावटी उसका उचित समाधान करके उनको सत्यकी खोजके प्रतिष्ठासे, बनावटी रिश्तोंके बनावटी प्रेमसे, मिथ्या लिये प्रेरित किया जाय। - दूढ़ इच्छाशक्ति (श्रीरामिकशोरजी) एक बालक जन्मके समय अत्यन्त कमजोर था। बादमें वह पोलियोका शिकार हो गया। डॉक्टरोंने उसके माता-पिताको बताया कि उसका इलाज दवाओंसे नहीं, बल्कि उसकी अपनी इच्छाओंसे हो सकेगा। बालकको धीरे-धीरे खुद भी इसका एहसास हुआ। वह दूसरे बच्चोंको जब मैदानमें भागते देखता, तो खुद भी दौड़नेकी कोशिश करता। उसके माता-पिताने उसके लिये यही किया कि वे रोज उसे पार्कमें ले जाते। धीरे-धीरे बालकके शरीरकी गाँठ खुलने लगी। एक दिन वह सचमुच दूसरे बच्चोंकी तरह दौड़ने-कूदने लगा। मगर उस बालककी दौड़ यहीं खत्म होनेवाली नहीं थी। १६ जुलाई, १९००को अपनी इच्छाशक्तिका कमाल दिखाते हुए ओलंपिकमें ऊँची कूद, लम्बी कूद और तिहरी कूद—तीनों प्रतिस्पर्धाओंमें उस बालकने स्वर्ण पदक प्राप्त किये। ऐसी लगन और प्रबल इच्छाशक्तिकी मिसाल कायम करनेवाले वह धावक, अमेरिकाके 'रे एवरी' थे। उनका जीवन इस बातकी प्रेरणा देता है कि दृढ़ इच्छाशक्तिके बलपर मनुष्य अपनी शारीरिक बाधाओंपर विजय प्राप्त कर लेता है।

िभाग ९४

साधकोंकी दशा। अब बताओ, क्या ऐसी जानकारी,

क्रिया और मान्यतासे हमारा काम चल सकेगा? कहना

प्रभाव नहीं होगा, तबतक तो उन्हें वास्तविक भी नहीं

कह सकते। फिर उनसे हमें लक्ष्यकी प्राप्ति हो ही कैसे

सकती है ? अर्थात् नहीं हो सकती। तो बताओ, त्याग

और प्यार करना भी किसीसे सीखना पडता है क्या?

जिसको असार और दु:खरूप जान लेंगे, उसका त्याग

और जिसे अपना तथा सुखरूप मान लेंगे, उससे प्यार

त्याग और भगवान्को अपना तथा सुखधाम मानकर भी

उनसे प्रेम नहीं कर पाते। इसका एकमात्र कारण यही है

कि हम संसारसे सुखकी आशा करते रहते हैं एवं उस सर्व-

भी अपना है-ये दोनों बातें एक साथ नहीं होतीं।

जबतक हम और कुछ भी अपना मानते हैं, तबतक तो

मुखसे कहते हुए भी हमने सच्चे हृदयसे भगवान्को

उपर्युक्त बातें जीवनमें उतारो, सफलता अवश्य मिलेगी।

अतएव यदि इसी जन्ममें सफलता चाहते हो तो

समर्थ प्रभुको सरल हृदयसे अपना नहीं मानते।

अपना नहीं माना। यही इसकी पहचान है।

यह बात परम सत्य है। ॐ आनन्द!

हम संसारको असत्य और दु:खद जानकर भी उसका

याद रहे, और कुछ भी अपना है और परमात्मा

जानकारी, मान्यता और क्रियाओंका जबतक जीवनपर

असंग रहो और भगवान्को अपना मानो

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

होगा, नहीं चलेगा।

तो स्वतः होना चाहिये।

चित्तमें शान्ति नहीं मिलती। हम धर्मको जानते और मेरे आत्मस्वरूप साधक महानुभाव! संसारसे सुखकी

आशाके रहते त्याग नहीं होता, ममताके रहते विकार मानते हैं, परंतु आचरणमें नहीं ला पाते। हमने योगकी

नहीं मिटते और कामनाओंके रहते शान्ति नहीं मिलती।

क्रिया करते हुए जीवनका बड़ा भाग बिता दिया, परंतु

प्रवृत्तियोंका निरोध नहीं कर पाये। यह तो है आजके

चाहरहित हुए बिना योगकी सिद्धि नहीं मिलती, असंगताके

बिना बोध नहीं हो सकता और आत्मीयताके बिना

प्रेमकी प्राप्ति नहीं हो सकती। यह सब बातें ध्रुवसत्य

हैं। या कहो कि प्रभुका ऐसा कुछ विधान ही है।

इसलिये संसारसे सुखकी आशा मत करो। प्राप्तकी

ममता और अप्राप्तकी कामना मत करो। निष्काम-

भगवान्को अपना मानो। फिर तुम जो कुछ भी साधन

करोगे, उसमें सफलता अवश्य मिलेगी। परंतु जो साधन

करो वह रुचिकर हो, सन्देहरहित हो और सामर्थ्यके

बाहर न हो। कारण, रुचिकर होनेसे मन और सन्देह-

रहित होनेसे बुद्धि साधनमें लग जाती है। और

सामर्थ्यके भीतर होनेसे उकताहट तथा थकावट नहीं

होती। इनके अतिरिक्त सफलता न मिलनेमें और कोई

सफलता मिलना ही साधनकी सिद्धि है और सिद्धि कुछ

नहीं। परंतु आज क्या होता है कि हम संसारकी

वास्तविकताको जानते हुए भी उसकी आशाका त्याग

नहीं कर पाते। हम भगवानुको मानते हैं, उनसे प्रेम करना

चाहते हैं, परंतु नहीं कर पाते। हम ब्रह्म हैं अथवा आत्मा

हैं, ऐसा मानते हैं, परंतु बोध नहीं होता। हम निर्दोष

हम भगवान्का चिन्तन-ध्यान करते हैं, परंतु

होना चाहते हैं, परंतु नहीं हो पाते।

जानकारी, मान्यता और जो हम करते हैं, उसमें

सब प्रकारकी स्वीकृतियोंसे असंग रहो और

भावसे सभी कर्म करो।

कारण नहीं है।

वर्तमान युगमें ज्योतिषका महत्त्व संख्या ३] वर्तमान युगमें ज्योतिषका महत्त्व (पं० श्रीसंजय शिवशंकरजी दवे, ज्योतिषाचार्य) हमारे जीवनमें ग्रहोंका तारतम्य असम्भव है। इसी कारण वाहन खरीदते समय, भवनमें पृथ्वीपर जो भी बीमारी पैदा होती है, जो भी प्रवेशके समय, विवाह आदिमें ग्रहोंकी अनुकूल स्थिति महामारी पैदा होती है, वह सब कुछ नक्षत्रोंसे सम्बन्धित देखी जाती है, ताकि शुभ कार्योंके प्रारम्भमें आपका मन है, अब तो इसके वैज्ञानिक आधार भी मिल गये हैं.जब प्रसन्न और शान्त रहे, विषय-स्थितिसे आपका तारतम्य भी सूर्यपर ११ वर्ष पश्चात् आणविक विस्फोट होता है, स्थापित हो सके। तभी पृथ्वीपर युद्ध और क्रान्तियाँ बढ जाती हैं, जब पूर्णिमाके निकट आते-आते सारी दुनियामें कई सूर्यको ग्रहण लगता है तो पक्षी कई घण्टों पूर्व ही साध्-लोगोंका मानसिक सन्तुलन विचलित हो जाता है तथा अमावस्याके दिन यह प्रभाव कम होता है। अगर हम संन्यासीकी भाँति मौन हो जाते हैं, बन्दर वृक्ष छोडकर जमीनपर आ जाते हैं और शान्ति व्याप्त हो जाती है। मिलेट्रीके सेनापति, योद्धा, जनरलकी कुण्डलीका अध्ययन पाइथागोरसने पाया कि नक्षत्रोंकी एक विशेष करें तो पायेंगे कि अधिकांशत: उनकी कुण्डलीमें ध्वनि अपनी गतिसे पैदा होती है, जो जन्म लेनेवाले मंगलका प्रभाव भारी रहेगा, वहीं धार्मिक एवं शान्तिवादीमें जातकके प्राथमिक संवेदनशील, सरलतम चित्तपर अंकित गुरुका प्रभाव प्रबल देखनेको मिलता है। हो जाती है। जब मनुष्य अपने उस नक्षत्रसे तालमेल बना ज्योतिष विद्या एक बहुत वैज्ञानिक चिन्तन है, लेता है तो स्वस्थ होता है और जब उसका तालमेल कुण्डलीमें ग्रहों एवं नक्षत्रोंके अध्ययनसे भविष्यके गर्तमें उस मूल संगीतसे छूट जाता है तो वह अस्वस्थ हो जाता छुपी स्थितिको जानकर हम उचित धारामें शान्ति-समृद्धिको है। व्यक्तिको अपनी जन्म-कुण्डलीके अनुरूप ही प्राप्त कर सकते हैं, अन्यथा विपरीत आयामोंमें हम तनाव, रंगोंका चुनाव, मंत्र, साधना, भोजन और देव-पूजन चिन्ता, अशान्ति ही प्राप्त करेंगे और यही स्थिति आज करना चाहिये, ताकि ग्रहोंका तारतम्य बना रहे। अधिकांश लोगोंके साथ देखनेको मिल रही है। सम्पूर्ण जगत् एक आर्गेनिक यूनिटी है, पूरा वर्तमानमें चल रही ज्योतिषशास्त्रके प्रति लोगोंकी ब्रह्माण्ड एक शरीर है, सब संयुक्त हैं, इसलिये दुरस्थित भ्रान्ति और तर्क-वितर्कको परे हटाते हुए हमें इसके वास्तविक रहस्योंकी ओर अग्रसर होना होगा, जिससे तारा जब स्थिति बदलता है तो हमारे हृदयकी गतिको भी बदल देता है, रक्तकी धाराएँ भी बदल जाती हैं। हम अपने जीवनको सुव्यवस्थित और शान्तिमय बना सकें, यही समयकी माँग है। ज्योतिष एवं ग्रहोंका सही विश्लेषण होना जरूरी है, मेरा मानना है कि हमारे हाथमें ज्योतिषके अधूरे सूत्र जीवनमें ज्योतिषीय महत्त्व हैं। अब मात्र घण्टे-दो घण्टेमें अगर मैं जातककी सटीक मानव-जीवनमें जब भी संकटोंका दौर आता है तो भविष्यवाणी कर दूँ तो शायद यह मेरे लिये असम्भव उसकी सहज वृत्ति उसे ज्योतिषी, पण्डित, गुरु, इष्टकी ओर अग्रसर कर देती है, ऐसी विकट स्थितिमें मात्र ही होगा। पृथ्वीपर सारे ग्रह-नक्षत्रोंकी अनन्त किरणें टकराती मनुष्यद्वारा किया गया पुण्य-अर्जन और आत्मबल ही हैं, शायद ही कोई ऐसी चीज है, जो उससे अप्रभावित उसका सच्चा हितैषी होता है। हो। चाँदसे समुद्र प्रभावित होता है। समुद्रमें पानी और ग्रहोंकी विपरीत स्थितिमें भौतिक संसाधन किसी भी रूपमें हमारे पूर्ण सहयोगी नहीं बन सकते। इसलिये नमकका जो अनुपात है, वही अनुपात हमारे शरीरमें भी स्थित है, अगर चाँदसे समुद्रका जल प्रभावित हो जाता समय रहते ही हमें पुण्य-अर्जन कर लेना चाहिये। है तो मनुष्यपर उसका प्रभाव नहीं होगा, यह तो जिस दिन हमारा मन विचलित और अशान्त रहता

भाग ९४ नहीं करता, यह तो आपको परिस्थितियोंके अनुरूप है. ऐसी स्थितिमें शायद हममें उसका विशेष कारण जाननेकी जिज्ञासा रही होगी। ज्योतिषके अध्ययनके संघर्षीहेतु वास्तविक ज्ञानका बोध कराता है। परिस्थितियोंका अन्तर्गत ग्रहोंके अनुरूप व्यक्तिविशेषके लिये रंग, भोजन, परिवर्तन या बदलाव तो जातक स्वयं अपनी साधना और आराध्य देव और मन्त्रोंका वर्णन बतलाया जाता है। पुण्य-संग्रहद्वारा ही कर सकता है। कफ, पित्त, वातकी प्रवृत्ति तथा विपरीत भोजन, ग्रहोंके वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें गुण-मिलानका औचित्य आवश्यकता आविष्कारकी जननी है, बिना किसी विपरीत किया गया रंगोंका चुनाव निश्चित ही हमें अशान्त और विचलित कर देता है। कारणके किसी भी चीजका जन्म नहीं होता, किसी भी साधारणतया अगर हम अध्ययनद्वारा देखें तो पायेंगे स्थितिके पीछे एक नियत कारण जरूर विद्यमान होता है। कि अमुक खाद्य पदार्थ एवं अमुक रंगके वस्त्रोंसे मन ऐसी कौन-सी परिस्थिति और हालात थे, जिसके चलते विचलित रहता है। ज्योतिष-विज्ञानमें ग्रहके अनुरूप आज ज्योतिषका क्षेत्र इतना व्यापक और विस्तृतरूपमें फैला। पूर्वमें ज्योतिषको इतनी प्राथमिकता क्यों नहीं दी पालनीय नियमोंके द्वारा हम ग्रहोंके विपरीत प्रभावको कम कर सकते हैं, जिस प्रकार हम किसी रोगके उपचारके गयी—यह प्रश्न मस्तिष्कमें बार-बार आता है, परन्तु अगर लिये आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक, नेचरोपैथीका सहारा लेते हम इस गहनतम विषयसे अनिभज्ञ हैं तो यह स्वीकार करना होगा कि हम ऊपरी परतको खोज रहे हैं। हमने गहराईमें हैं, उसी प्रकार ज्योतिष विज्ञानमें तन्त्र यानी साधना, पूजन, अनुष्ठान, सम्बन्धित इष्ट मन्त्र, ग्रहोंके मन्त्रका जप, मूल सत्यको जाना ही नहीं, समझा ही नहीं। पूर्वकी स्थिति और वर्तमानकी स्थितिमें जमीन-आसमानका अन्तर आ ग्रहके अनुकूल प्रभावहेतु रत्न, रुद्राक्ष धारण करना यह व्यक्तिविशेषके ऊपर निर्भर करता है कि वह किस गया है। आजकी स्थितिके अनुरूप पूर्वमें टेलीविजन, पद्धतिको प्राथमिकता देता है। तीनों स्थितियाँ समान ऊर्जा फेसबुक, ट्यूटर, वाट्सएप नहीं थे। पूर्वमें लोगोंके चिन्तनमें और बल प्रदान करनेमें सहायक होती हैं। आजकी तरह विराट् भौतिक चिन्तन नहीं था, उनमें अतीतका सबसे विशेष और महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि चिन्तन और अनुभवजनित ज्ञान था। उनमें सहजता थी, जातकके लिये दर्शाये गये ज्योतिषीय नियमोंको अति उनमें सरलता थी, उनमें धैर्य था और उनमें वास्तविक गोपनीय रखना आवश्यक होता है: क्योंकि अन्यत्र व्यक्तिद्वारा धर्मकी समझ थी। उस वक्त सारा जीवन नियमोंके अनुरूप दिये गये तर्कसे मन विचलित होता है। साथ-ही-साथ होता था। नियम ही सर्वोपरि थे, उस वक्त आदर, सम्मान, इसमें पूर्ण श्रद्धा और विश्वासका होना भी अति आवश्यक है। लज्जा, शर्म थी और जहाँ नियम-धर्म, लज्जा, शर्म होती है; व्यक्तिके जीवनमें उसके स्वभावद्वारा भी जन्म-वहाँ गुणोंके औचित्यकी प्राथमिकता नहीं रहती, नियम ही कुण्डलीके ग्रहोंकी स्थितिका अध्ययन किया जाता है; जीवनको सुव्यवस्था प्रदान करते हैं। कुछ वर्षों पूर्वमें ही योगका इतना प्रचार-प्रसार क्यों क्योंकि ग्रहोंके अनुरूप ही उसके जीवनकी स्थितियोंका हुआ ? आज योगके विश्वविद्यालय खुल गये, विद्यालयोंमें निर्धारण होता है। उदाहरणार्थ जिस व्यक्तिको क्रोध ज्यादा आता है, उसे लाल रंगके वस्त्र धारण नहीं करना योगकी शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी, क्यों ? पूर्वमें इसे चाहिये तथा प्रतिदिन शुद्ध चन्दन तिलक लगाना इतना बढ़ावा प्राप्त नहीं हुआ, उसका मूल कारण मात्र चाहिये। इसके विपरीत अति शान्त और सरल जातकको यही था कि उस वक्त लोग मेहनती थे, वातावरण शुद्ध था, लाल मेरून रंगके वस्त्र शुभप्रद रहते हैं। विचलित मन उस वक्त रोग इतने नहीं थे कि योगको अपने विराट् तथा अमर्यादित जातकको श्रीरामचन्द्रजीकी आराधना स्वरूपमें प्रकट होनेकी आवश्यकता पडे, आज रोगोंने तथा अति सहज व्यक्तिको भगवान् कृष्णजीकी आराधना चारों ओरसे आक्रमण कर दिया है तो स्वाभाविक है कि शुभ फलदायक होती है। योगको अपने मृल स्वरूपमें आना पडा। Hindhian विज्ञितार्या विकार वार्यास्यातः अपिकार विकार विकार

संख्या ३] वर्तमान युगमें ज	योतिषका महत्त्व ३१
**************************************	*********************************
होते हैं। अभी विज्ञान उस स्तरतक नहीं पहुँच सका, अन्यथा	क्या आज हमारे पास पूर्व-जैसे कोई अनुभव-
हमारे डीएनए से हमारे परदादाके परदादाका भी क्लोम	नियम हैं, कितना जानते हैं हम? दूसरे पक्षका कोई
निर्मित किया जा सकता, हूबहू वैसाका वैसा ही, पूर्वमें	आधार है? जिन आधारोंको हम देखते हैं। मकान,
लोगोंको अपने सात पीढ़ीतकके नाम, उनका पूरा इतिहास	नौकरी, पैसा—ये जीवनके मूल आधार होते तो उन
उन्हें स्मरणमें था; क्योंकि उनकी चेतना पूर्ण रूपसे भविष्यमें	घरोंमें अशान्ति, तलाक, झगड़े न होते। मूल आधार
न होकर अतीतके अनुभवके रूपमें थी। आजकी पीढ़ीके	आज हम भूल चुके हैं, इसीलिये ज्योतिष-शास्त्रको
युवासे पूछकर देखो कि परदादाका नाम क्या है ?	सामने आना पड़ा।
पूर्वमें लोग विवाहहेतु ऋषि, गोत्र, भैरव, कुलदेवी,	मंगल दोषको पूर्वमें प्राथमिकतासे नहीं देखा जाता
रहन-सहन, खान-पान सभीका स्मरण रखते थे, उनका	था, आज भी ग्रामीण अंचलमें मंगल दोषको प्राथमिकतापर
अनुभव आजके गुणोंके मिलानका वैज्ञानिक धार्मिक मूल	नहीं देखा जाता, मंगल दोषके कारण हारमोंस अनियन्त्रित
स्तम्भ था, वे जानते थे कि किस घरमें बिटियाको देनेपर	होते हैं, जिसके कारण व्यक्ति भावविभोरमें प्रेम-प्रसंगमें
वह सुखी नहीं रहेगी, जानते थे कि किस परिवारके	पड़ सकता है और चारित्रिक दोष लगता है, साथ ही
संस्कार उनके संस्कारसे पृथक् (षडाष्टक दोष, वैरयोनि	ऐसे जातकके सम्भवत: दो विवाह-योग बनते हैं। पूर्वमें
दोष) हैं, वे अनुभवसे जानते थे कि किस परिवारमें	नियम-कायदे कठोर होते थे, साथ ही व्यक्ति धार्मिक
शादीसे सन्तान–सम्बन्धी दिक्कत रहती है (नवपंचम दोष)।	नियमोंका पूर्ण पालन करता था, मंगल कितना भी भारी
उन्हें पूर्वका अनुभव था कि किस परिवारमें जातिगत चार	हो, नियम भय और लोकलिहाज, धर्मके आगे उसका
पीढ़ी उपरान्त लकवा, चर्म आदि रोगकी सम्भावना रहती	अस्तित्व नहीं नजर आता था। आज वह स्थिति नहीं
है। वे नियत समयपर वैवाहिक आयोजन उस परिवारसे	है, आज लोकलिहाज, शर्मने फेसबुक और वाट्सऐपके
नहीं करते थे। वे जानते थे कि खान-पान पृथक्, पूजन-	आगे अपने घुटने टेक दिये। अतः आज मंगल दोषका
आराधना, साधना पृथक् होनेसे क्या समस्या आती है, वे	निवारण किया जाना आवश्यक हो गया है।
उस तरहके बेमेल परिवारसे विवाहतक नहीं करते थे,	पहले रिश्तोंका आधार दो परिवारोंका मिलन था।
उनका अनुभव पिछली सात पीढ़ीतकका था, हमारा कितना	स्नेहकी पराकाष्टा क्या होगी, जब कोई कहता है कि
है चार महीने, एक सालका। उस वक्त परिवारका अर्थ	मेरे घर लड़की हुई तो तेरे लड़केसे शादी कराऊँगा,
पूरा गाँव था, आज परिवारका अर्थ हम दो-हमारे दो,	पहले रिश्ते देखनेका आधार कुछ और था, आज रिश्ते
आज हम उस मूल सूत्रको दरिकनारकर क्या देखते हैं कि	ऑनलाइन और समाचार-पत्रमें देखे जाते हैं।
अच्छी नौकरी, पैसा, मकान। अन्य रहस्यसे दूर रहनेका	जो लोग इस ज्योतिष-शास्त्रके विरोधमें हैं, उनसे
परिणाम आज तलाक, विवाद, मारपीट-जैसी घटनाओंके	इतना ही कहना है कि अगर वे आधुनिक बनना चाहते
रूपमें हमें सामने देखनेको मिल रहा है।	हैं तो पाश्चात्य जगत्में विवाहकी कितनी गम्भीरता है;
पूर्वमें कुण्डली-मिलानका आधार धर्मके अन्तर्गत	इससे शायद कोई भी अनभिज्ञ नहीं होगा।
व्यवहार-शास्त्र, अनुभव-शास्त्र था। आज वह ज्ञान	यद्यपि कुछ स्वार्थी लोगोंके कारण ज्योतिषशास्त्रकी
लुप्त हो गया है, तभी ज्योतिष-शास्त्रको आज अपने	गरिमाको आघात लगा है और जो लोग इनके शिकार
विराट् स्वरूपमें सामने आना पड़ा, अभी शास्त्रोंमें दर्शन,	हुए हैं, उनका आवेशित होना भी जायज है, परन्तु एक
यज्ञ-चिकित्सा, संकल्प-शक्ति, मन्त्रशक्ति-जैसे और भी	बात यह भी पूर्णतया स्वीकार करनेयोग्य है कि एक
हजारों रहस्य विद्यमान हैं, जो परमात्मा स्वयं समयके	ज्योतिषी गलत हो सकता है, परन्तु ज्योतिषशास्त्र
साथ सुव्यवस्थित रूपसे सामने प्रस्तुत करेगा।	कदापि नहीं।
	>+

विश्नोई सम्प्रदायके जाम्भाणी साहित्यमें प्राप्त प्रेरक बोधकथाएँ

भाग ९४

(श्रीविनोद जम्भदासजी कड़वासरा)

रचनाकार हुए हैं, जिन्होंने कथाएँ लिखी हैं। बोध यानी ज्ञान। मूलमें सभी ज्ञानी हैं, कोई

अज्ञानी नहीं है। ज्ञान तो सबके अन्दर है, केवल सन्त वील्होजीकी कथा धड़ाबन्ध, कथा औतारपात,

विस्मृति हुई है। भूले हुएकी याद आना ही ज्ञान है। इस कथा गुगलियैकी, कथा पुल्हैजीकी, कथा दुणपुरकी, भूलको ही अबोधता कहते हैं, जैसे बालककी अबोधावस्था। कथा जैसलमेरकी, कथा झोरडांकी, कथा ग्यांनचरी और

जैसे-जैसे यह भूल मिटती जाती है, उसे बोध होता सन्त केसौदासजी गोदाराकी कथा बाललीला, कथा उदै

जाता है। गीताने इसे लब्धा कहा है—स्मृतिर्लब्धा। अतलीकी, कथा सैंसै जोखाणीकी, कथा मेडतेकी, कथा खोई हुई वस्तुकी पुन: प्राप्ति को लब्धा कहते हैं। यह चित्तौडकी, कथा इसकंदरकी, कथा जती तलावकी,

कथा विगतावली, कथा लोहापांगलकी, कथा भींव प्रत्येक व्यक्तिका अनुभव है कि वह कोई नयी बात

सीखता है तो उसे लगता है, जैसे उसे यह पहलेसे ही दुसासणीकी, कथा सुरगारोहणी, कथा बहसोवंणी, कथा

पता थी, परंतु याद नहीं आ रही थी। इस याद दिलानेकी म्रघलेखाकी तथा सन्त सुरजनदासजी पूनियांकी कथा क्रियामें जो सहायक बनता है, उसे गुरु कहते हैं और चेतन, कथा चितांवणी, कथा धरंमचरी, कथा हरिगुण,

इस क्रियासे उसे जो स्मृति आती है, उसे बोध कहते कथा औतारकी, कथा परसिध, कथा गजमोख, कथा हैं। इस भूलको मिटानेके लिये अनेक उपाय अपनाये उषा पुराण आदि इन सन्तोंकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

जाते हैं, जिसमें सबसे सशक्त उपाय है—बोधकथा। उपरोक्त इन कथाओंकी विषयवस्तुका हम अवलोकन

कथाके माध्यमसे किसी बातको सहजतापूर्वक समझा करें तो ये सब जीवको संसारकी असारता बताकर उसे जा सकता है। बोधकथामें पात्रके चरित्रको इस प्रकार ईश्वर-साक्षात्कारकी ओर प्रेरित करती हुई प्रतीत होती

सुरुचिपूर्ण ढंगसे प्रस्तुत किया जाता है कि पाठकको वह चलचित्रकी तरह लगता है और कथा-सन्देश सुगमतासे विस्तारभयसे इन कथाओं में से कुछेककी ही यहाँ

चर्चा सम्भव है। वील्होजीकी 'कथा गुगलियैकी'में उसे ग्राह्य हो जाता है। कथा-सत्संगका मूल उद्देश्य यही है कि जीवको परमात्माके साथ उसके अभिन्न सम्बन्धका श्रीजाम्भोजी मारवाडक्षेत्रमें पडे घोर अकालके समय

गाँवोंको छोड़कर उजड़ रहे लोगोंको आश्वस्त करते हैं बोध हो जाय।

अन्यान्य मत-पन्थोंकी तरह विश्नोई सम्प्रदायके और जबतक सुकाल नहीं हो गया, उनके लिये अन्नकी

साहित्यमें भी बोधकथाएँ विपुल मात्रामें मिलती हैं। व्यवस्था करते हैं। वर्षा होनेपर अपने योगबलसे गूगलके राजस्थानी भाषामें काव्यात्मक शैलीमें लिखी गयी ये धुएँसे एक ऊँट उत्पन्न करके उसपर किसानोंको

कथाएँ साहित्य-जगत्में अपना विलक्षण स्थान रखती तात्कालिक सिन्ध प्रदेशसे फसलोंके उत्तम बीज लानेके हैं। संवत् १५४२में श्रीगुरु जम्भेश्वर भगवान् अपर नाम लिये भेजते हैं। वह ऊँट तेजगतिसे अपने कार्यको पूर्ण

श्रीजाम्भोजीद्वारा संस्थापित विश्नोई सम्प्रदायका साहित्य, करके वापस आकर लुप्त हो जाता है। इस कथामें जिसका प्रचलित नाम 'जाम्भाणी साहित्य' है, उसमें दर्शाया गया है कि सामर्थ्यवानुको सदा असमर्थकी

विश्नोई सन्त कवियोंकी सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दीकी सहायता करनी चाहिये ताकि वह समाजकी मुख्यधारासे

रचनाओंपर नजर डालें तो प्रमुख रूपसे वील्होजी, जुड़ा रहे। किसानोंको सदा फसल बोते समय उत्तम

केसोजी गोदारा और सुरजनजी पूनियाँ—इन तीन सन्त बीजोंका ही प्रयोग करना चाहिये, इससे फसल भरपूर

कवियोंकी कथाओंका उल्लेख करना यहाँ समीचीन मिलती है, निम्न स्तरके बीजोंके कारण फसल खराब होगा। इनके अलावा सम्प्रदायमें और भी कई ऐसे हो जाती है और किसानकी कमरतोड़ मेहनत बेकार

संख्या ३] विश्नोई सम्प्रदायके जाम्भाणी स	गहित्यमें प्राप्त प्रेरक बोधकथाएँ ३३
******************************	******************************
चली जाती है। बीजके परिप्रेक्ष्यमें इसका आध्यात्मिक	गोयंद नामक दो चोरोंकी कथा है। वे मारवाड़से सिन्ध
पक्ष भी है कि जैसा बीज होगा, वैसी ही खेती होगी	प्रदेशमें पशु चुरानेके लिये जाते हैं। रास्तेमें बियावान,
यानी खेतरूपी शरीरसे जैसे कर्म करोगे, वैसा ही फल	बहुत लम्बा-चौड़ा रेगिस्तान पड़ता है। गर्मीका मौसम
प्राप्त होगा। इन्हींकी अन्य कथा जिसका नाम 'कथा	था, उनके पास पानीसे भरी हुई चमड़ेकी बनी हुई
दूणपुरकी' में एक चतुर्थ वर्णके मोतीराम नामक भक्तकी	'पखाल' थी, उसे वे एक वृक्षपर टाँगकर चले जाते हैं।
कथा है। मोतीराम धर्मके नियमोंका कठोरतासे पालन	वहाँ जाकर उन्होंने बहुत-सी चोरियाँ कीं और वापस
करता है और इस सम्बन्धमें वह उच्च वर्णोंके पथभ्रष्ट	लौटते समय रेगिस्तानको पार करते हुए प्याससे व्याकुल
लोगोंको अछूत समझता है। यह बात उच्च वर्णके	होकर जैसे-तैसे उस वृक्षके पास पहुँचते हैं, पानी पीनेके
लोगोंको हजम नहीं होती, वे राजाके कान भरकर उसे	लिये जैसे ही उस पखालको नीचे उतारा वह तो खाली
जेलमें डलवा देते हैं। वहाँ वह अपने गुरु श्रीजम्भोजीसे	मिली, किसी जानवरने उसे काट दिया था, जिससे सारा
करुण पुकार करता है, वे वहाँपर प्रकट होते हैं और	पानी बह गया। अब उनके प्राण सूखने लगे, उन्होंने
राजा तथा प्रजा दोनोंको उपदेश देते हुए कहते हैं कि	श्रीजम्भोजीसे प्रार्थना की कि आज किसी प्रकार प्राण
भगवत्प्राप्तिमें सब जीवोंका समान अधिकार है, इसमें	बच जाय तो हम यह चोरीका धन्धा छोड़ देंगे। तभी
वर्णभेद निरर्थक है। कोई उत्तम कुलमें जन्म लेनेमात्रसे	एक छोटा–सा बादल प्रकट होता है और पानी बरसाकर
उत्तम नहीं बन जाता, उसके कर्म ही उसकी स्थिति	पासके एक बड़ेसे गड्ढेको भर देता है। अपने वादेके
निर्धारित करेंगे—	अनुसार उन्होंने चोरीरूपी निन्दित कर्मको त्याग दिया
'उत्तम कुलि का उत्तम न होयबा, कारण किरिया सारूं।'	और पवित्र कमाई करके जीवनयापन करने लगे। एक
(सबदवाणी)	दिन यात्राके समय वे किसीके यहाँ रात्रि-विश्रामके लिये
भगवान्की कलम सबका हिसाब-किताब लिखती	रुके, चोरीका पुराना संस्कार जाग्रत् हो गया, रात्रिमें उठे
है, वह मिटाया नहीं जा सकता। कोई इस भ्रममें नहीं	और मकान-मालिककी बैलोंकी एक जोड़ी चुराकर
रहे कि मेरा कुल, वर्ण बहुत ऊँचा है। किये हुए कर्म	रवाना हो गये। सुबह उठनेपर घरवालोंको वे दोनो यात्री
तो भोगने ही भोगने पड़ेंगे—	और बैल गायब मिले। गाँवके बहुतसे लोग उनका पीछा
कलम ज सीरजण हार की, परति न पाछी होय।	करते हुए उनके समीप पहुँच गये, उन्होंने एक बार पुन:
जो करिसी सो भुगतिसी, भरम न भुलौ कोय॥	श्रीजम्भोजीसे रक्षा करनेकी प्रार्थना की, तब वे क्या
इस कथामें मोतीरामद्वारा अपनी पत्नीको कही गयी	देखते हैं कि उन बैलोंके रंग और सींगोंके आकार-प्रकार
दो पंक्तियाँ अति मार्मिक बन पड़ी हैं, जिसमें वह अपनी	बदल गये हैं। बैलोंके मालिकने कहा कि रस्सी तो वही
पत्नीको धीरज देते हुए कहता है कि—'हमें तो अहर्निश	है, परंतु बैल वे नहीं हैं। उन दोनों चोरोंको पकड़कर
भगवान्का भजन करना है, वे चाहेंगे तो इस संकटसे	बैलोंसहित श्रीजम्भोजीके समक्ष पेश किया गया, उन्होंने
उबार लेंगे, अगर हमारे भाग्यमें ही इन लोगोंके हाथों	उन चोरोंको फटकारते हुए कहा कि—'अपने पापकर्मोंके
मरना लिखा है तो भी कोई चिन्ताकी बात नहीं है,	लिये हृदयमें ग्लानि भरकर घोर पश्चात्ताप करते हुए उन
क्योंकि धर्मका पालन करते हुए मरनेपर मोक्ष मिलेगा।'	कर्मोंको पुन: न करनेका संकल्प ही सच्चा प्रायश्चित्त
कविने मोतीरामको साधु कहकर सम्बोधित किया है—	है, परंतु ऐसे संकल्पके बाद भी दोबारा उन कर्मोंके
साध कह सुण्य साधणी, सीवरौ सिरजैण हार।	करनेसे दुर्गति ही होगी; क्योंकि रोज-रोज बैलोंका रंग
उबारै तौ उबरां, मरां तो मोख दवार।	और सींगोंका आकार नहीं बदलेगा यानी ऐसेमें रक्षक
वील्होजीद्वारा रचित 'कथा झोरडांकी' रावण और	कबतक रक्षा करेगा। दयाहीन और चोर स्वर्गमें प्रवेश

भाग ९४ पानेके अधिकारी नहीं हैं। जप, तप, शील, क्षमा और नीहचौ अतली जी उं कीयो। साधुसेवासे पाप नष्ट हो जाते हैं और ये गुण कैवल्य पीयार, अंतरि असौ अतली ज्ञानीके संसर्गसे प्राप्त होते हैं-सीरजंण भगत पधारया हार। गोयंद चोरी नां करी, कलंक न लाई राह। स्वार्थके वशीभूत हुए संसारको जब अतिथि बार बार होसी नहीं, सेत वरण अरु स्याह। भाररूप लगता है, तब यह कथा उसे प्रेरणा देती है कि अतिथि-सेवा भी भगवत्प्राप्तिका एक साधन है। सीख दिया सतगुरु कह, सांभल रावण झोर। केसोजी गोदाराकी 'कथा सैंसै जोखांणीकी' में सुरगे दाद न पावहि, दया हीण अरु चोर। सैंसा कस्वां अपने गाँवका एक सम्पन्न आदमी है। वह जप तप शील खिंवती. और साधा की सेव। जम्भोजीका शिष्य है और उनके पास जाकर वह अपने एह पांचू पालण पाप का, केवल ज्ञानी देव। कवि केसोजी गोदाराकी एक रचना 'कथा उदै थोडे-से किये दानको अधिक बताकर उसकी शेखी बघारता है। तब वे उसे ऐसा करनेसे रोकते हैं। वे सदैव अतलीकी ' में आतिथ्य-सत्कारका मार्मिक चित्रण किया गया है। उदो और अतली नामक दम्पती अतिथि-सेवाके अपने उपदेशमें कहते हैं कि—'दान करनेके बाद उसका लिये इतने आतुर रहते कि जिस दिन उनके घर कोई अभिमान नहीं होना चाहिये, अपने पास उपलब्ध थोडी वस्तुमें-से भी थोड़ी दान कर देनी चाहिये, होते हुए ना अतिथि नहीं आता, उन्हें चैन नहीं पडता। उन्हें जब लगता कि इस गाँवमें अतिथि कम आते हैं तो वे उस नहीं कहना चाहिये। भगवदर्पण किया हुआ दान अनन्त गुना फलदायी होता है।' परंतु सैंसेपर ये बातें असर नहीं गाँवको छोड़कर दूसरे गाँवमें बस जाते। अतिथिको वे भगवान् मानते और उसकी बहुत प्रेमपूर्वक सेवा करते। करतीं। एक दिन श्रीजाम्भोजी रूप बदलकर उसके घर उसके लिये विभिन्न प्रकारके व्यंजन बनाते और उसकी भिक्षा लेने जाते हैं, तब उसके घरकी स्त्रियाँ उन्हें थालीमें तबतक घी डालते जबतक अतिथि आग्रहपूर्वक अनादरपूर्वक रात्रिका बासी भोजन और ओढ़नेके लिये मना न कर देता। कई बार तो ऐसा भी होता जब घी एक मैली-कुचैली फटी-पुरानी गूदड़ी देती हैं तथा उनका भिक्षापात्र भी खंडित कर देती हैं। दूसरे दिन डालते समय अतिथिका ध्यान कहीं और चला जाता तो सुबह जब सैंसा उनके पास आकर प्रतिदिनकी भाँति घी थालीके ऊपरसे बहने लगता। 'अतिथिदेवो भव'-की उक्तिको चरितार्थ करनेवाले उस दम्पतीका जीवन अपने दानाभिमानका प्रदर्शन करता है तो उसे वे वस्तुएँ उस दिन सफल हो जाता है, जब भगवान् उनकी सेवासे दिखायी जाती हैं, जो कल उसके घरसे भिक्षामें प्राप्त रीझकर उनके घर पधारते हैं और छद्मवेशमें उनके हुई थीं। वह बहुत लज्जित होता है, उसे अपने व्यर्थके सेवाधर्मकी परीक्षा लेते हैं। उदो-अतली उस परीक्षामें अभिमानपर ग्लानि होती है और उसे लगता है कि इस उत्तीर्ण होते हैं। भगवान् प्रकट होकर दर्शन देते हैं और दोषके कारण भगवान् मेरा त्याग कर देंगे, फिर मुझे भवसागरसे कौन उबारेगा? पश्चात्ताप करते हुए सैंसा उन्हें अपना निज धाम प्रदान करते हैं-भविष्यमें अभिमान न करनेका प्रण लेता है-विछाय, वीध्य सुं वसतर धरया जीमैण भवसागर जाम परत, जाणंत पड़ीयो जोय। नै लिया बुलाय। जन पीय। हरजी छोड़ हाथ ता, काढ़ि नै सक कोय। चरणौदिक चरण पखाल्य सुरजनजी पूनियांकी 'कथा हरिगुण' में भगवान्की जीम जो सो न नांकार, कर अपार महिमाका बखान इस संकोचके साथ किया गया है अतली घीरत न खंडै धार। कि कहाँ तो आपकी महिमाका सागर और कहाँ मैं एक हुंती आखड़ी, अतली क छोटा-सा पक्षी, मेरी चोंचमें सागर कैसे आ सकता है? नांकार विण्य नै खड़ी। रह Hinduism Discord Server https://dsc.jgg/dharma र्म अभिक्तिभी प्रमास्यानिम्ह अभिक्षां प्रशासिकार कार्य

संख्या ३] आचरण-शुद्धिमें बोध	धकथाओंकी भूमिका ३५
\$	************************************
मिलती हैं। 'कथा गजमोख' गज और ग्राहकी लड़ाईमें	निम्नलिखित सवैया एक प्रकारसे उनकी कथाओंका
हारते हुए प्राण कंठगत होनेपर गजराजद्वारा श्रीहरिसे की	सार है और उनके शरणापन्नभावका श्रेष्ठ उदाहरण
गयी करुण पुकारकी प्रसिद्ध पौराणिक कथा 'गजेन्द्र	है—
मोक्ष' का राजस्थानी भाषामें सरस और भावपूर्ण	मघ कीयो तदि भाजि गयो,
प्रस्तुतीकरण है। 'कथा उषापुराण' में पूर्वके शापवश	सिंघ कियो तदि मारण धायो।
कामदेव द्वापरयुगमें श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्ध और	राजी कीयो तदि दान दियो,
कामदेवकी पत्नी रति बाणासुरकी पुत्री उषाके रूपमें	रंक कियो तदि मांगि के पायो।
जन्म लेते हैं, उसका वर्णन है। दो सौ बत्तीस छन्दोंका	जोई कियो सो मानि लियो,
यह आख्यान काव्य राजस्थानी भाषामें एक उत्कृष्ट	अब और सोह हरि के मनि भायो।
सृजन है। कविकी 'भोगळ पुराण' और 'रामरासौंं' भी	'हे प्रभु! आपने मुझे हिरण बनाया, तो मैं जान
ऐसी ही रचनाएँ हैं।	बचाकर भागा, शेर बनाया तो शिकार किया, राजा
'कथा चेतन' और 'कथा चितावणी' में जीवको	बनाया तो दान दिया, भिखारी बनाया तो माँगकर गुजारा
अशुभ कर्मोंसे सावधान रहने और शुभ कर्मोंको करनेके	किया। आपने जो विधान किया वही मैंने स्वीकार किया
लिये प्रेरित किया गया। कर्मोंका फल मिलना अवश्यम्भावी	और आगे भी जो आपको अच्छा लगे वही करना।'
है। कवि चेतावनी देता है कि पापकर्मकी स्फुरणा भी	वास्तवमें कथा तो वही है, जो जीवको भगवान्में
न हो, अन्त:करणकी भूमिमें पड़ा हुआ बीज कभी	लगा दे, बाकी तो सब व्यथा है। जाम्भाणी सन्तोंने
अंकुरित होगा, पेड़ बनेगा और फिर उसके फल हमें	अपनी कथाओंमें इस भावका सम्यक् निर्वहन करते हुए
खाने पड़ेंगे, इसलिये हरि नामकी अग्निमें उस बीजको	अपनी कलमसे ऐसी प्रेरणादायी कथाओंका सृजन किया
ही भून डालो। सर्वतोभावेन भगवान्के शरणागत होकर	है, जो अनन्त कालतक मुमुक्षुओंका मार्गदर्शन करती
भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करनेसे कर्मके बन्धन कट जाते हैं।	रहेंगी।
	
अनुगा-शन्तिमें हो।	धकथाओंकी भूमिका
आजरण सुगळान जार (श्रीसुरेन्द्रर्ज	•
बोधकथाको भावोंकी अभिव्यक्तिका अप्रतिम साधन	है। बोधकथाओंका मूल उद्गम जातक कथाएँ, पंचतन्त्र
माना जाता है। अनुभूतिके सहारे जब किसी सत्य	तथा हितोपदेशकी कथा-कहानियाँ ही हैं, जो पाठकके
घटनाका उज्ज्वल पक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो ये	अन्तःकरणको सात्त्विक तथा मानवीय गुणोंसे परिपूर्ण
कथाएँ अपना ठोस प्रभाव डालती हैं। इसकी समरसता	करती हैं। प्राचीन कालमें बिगड़े राजकुमारोंको आदर्शवान्
तथा रसात्मकता या प्रस्तुत करनेकी विधिमें ज्ञान पक्ष	बनानेके लिये विष्णु शर्मा-जैसे पण्डितोंने इसी विधाका
प्रबल होता है। बोधकथाएँ किसी-न-किसी तरह ज्ञानार्जन	उपयोग किया था। भारतीय संस्कृतिमें हमारे धार्मिक
कराती हैं, इसीलिये ये बोधकथाएँ कहलाती हैं।—डॉ०	ग्रन्थोंका विशेष महत्त्व रहा है। रामायण, महाभारत,
सुरेश वर्मा	वेद, उपनिषदों और अन्यान्य आख्यानोंके माध्यमसे
वस्तुत: बोधकथाएँ धार्मिक, नैतिक, व्यावहारिक	सत्यको उजागर किया गया है।
और मानव मनको उद्वेलित करनेवाली होती हैं, जब	वर्तमानमें पाठकके पास समयका अभाव होता जा
बोधकथाके माध्यमसे सत्य घटनाका नीतिपरक पक्ष	रहा है, अत: बोधकथाओंकी विशेष उपयोगिता मानी
प्रस्तुत किया जाता है तो वह पूर्णत: उद्देश्यनिष्ठ होती	जा रही है। बोधकथाओंका कलेवर अत्यधिक प्रभावपूर्ण

भाग ९४ और आकर्षक होता है। जो हृदय-तिन्त्रयोंको तत्काल है। ये कथाएँ सरस, सरल और बोधगम्य होती हैं। झंकृत कर देता है। किसी भी भटके बटोहीका मार्ग दैनिक जीवनसे सम्बद्ध घटनाक्रमसे जुड़ी होती हैं, जो प्रशस्तकर उसे सन्मार्गकी दिशामें अग्रसर होनेकी चेतना प्रकाशस्तम्भका कार्य करती हैं। प्रदान करता है। बोधकथाओंके सम्बन्धमें एमर्सनने कहा शिक्षण संस्थाओंमें विषयाध्यापनमें कई बार ऐसे है—'जो आदमी मेरा सन्देश सुनता है, जो मुझे समझता अवसर आ ही जाते हैं, जब किसी सन्दर्भ या है, सदा-सदाके लिये उसपर मेरा अधिकार हो घटनाक्रमका सहारा लेकर तथ्योंको स्पष्ट किया जाता जाता है।' है। ऐसे में बोधकथाओंका उपयोग प्रासंगिक होता है, वर्तमान समयमें नित्य नयी घटनाओंमें चोरी, जो विद्यार्थियोंमें संस्कारोंके निर्माणमें सहयोगी होती हैं। विशेषत: शिक्षण संस्थाओं में जहाँ नयी पीढीकी डकैती, भ्रष्टाचार, दुष्कर्म, बलात्कार, उत्पीड्न, लूटपाट, पौध तैयार हो रही है, वहाँ यदि बोधकथाओंद्वारा बाल हिंसा आदिका बाहुल्य है। इन समग्र घटनाओंका बाल मनपर कुत्सित और दुष्प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। वह मनको पोषण दिया जाय तो कलके नागरिक सही विविध घटनाओंसे प्रभावित होकर भटक जाता है। ऐसी मार्गका अनुसरण कर सकेंगे। उन्हें विषयाध्यापन, कला, अवस्थामें बोधकथाएँ रामबाण-जैसी हैं। जो एक नयी शिक्षा, पुस्तकालय, वाचनालय, खेल-मैदान, सहगामी चेतना और जागृति उत्पन्न करती हैं। प्राचीन कालमें प्रवृत्तियों आदिमें बोधकथाओंका प्रयोग विशेष सार्थक वन्य जीवोंकी कहानियों, नीति कथाओं, जातक कथाओं, सिद्ध होगा। आचरण-शुद्धिके लिये बोधकथाएँ एक हातिमताई तथा अलिफ लैलाकी लघु कथाओंका विशेष सशक्त साधन हैं, बोधकथाओंकी भावभूमिके आत्मीकरणसे स्थायी परिवर्तनकी सम्भावनाएँ बन जाती हैं। बेईमान प्रचलन रहा है। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्रीके अनुसार जैसे महाकाव्यके आंशिक गुणोंसे युक्त काव्यको व्यक्ति ईमानदार, भ्रष्टाचारी सदाचारी, क्रूर दयालु और डरपोक निडर बननेकी दिशामें अग्रसर होता है। मानवीय खण्डकाव्य अथवा गीतिकाव्य कहा जाता है, उसी प्रकार कथाशिल्पके आरम्भसे चरम बिन्दुतकके अनेक मूल्योंका आविर्भाव होता है तथा व्यक्तिका नैतिक तत्त्वोंको प्रभावशाली ढंगसे आत्मसात्कर जो विधा आचरण शुद्ध बनता है, जो राष्ट्र और समाजकी सुख-समृद्धिके लिये आवश्यक है। बोधकथाएँ मानव मनको प्रकाशमें आयी है, उसे बोधकथा कहते हैं। राजेन्द्र परदेसीका इस सन्दर्भमें कथन है—'किसी भी घटनाको अध्यात्म-अमृतसे सराबोर करती हैं तथा परमात्माके प्रति देखकर या सुनकर तत्क्षण जो प्रतिक्रिया कथ्यके रूपमें आस्था उत्पन्न करती हैं, जो विश्व-बन्धुत्वकी भावनाको उभरती है, उसे बोधकथा कहते हैं।' प्रबल बनाती है। बोधकथाएँ जीवनको मधुर बनाती हैं। तात्त्विक बोधकथाओंसे परिचय कराना नैतिक शिक्षाकी संदेशोंसे भरपूर होती हैं। वस्तुत: बोधकथाएँ साहित्यरूपी दुष्टिसे उपयोगी सिद्ध होगा। इनके माध्यमसे बालकोंमें उद्यानमें वे पुष्पावलियाँ हैं, जो मानवमात्रको जीवन-सदाचार, सेवा-भावना, उदारता, श्रमनिष्ठा, देशप्रेम, पर्यन्त अपनी सुगन्ध सौरभसे आकृष्ट करती रहती हैं। अनाचारोंसे मुक्ति और माता-पिता तथा गुरुजनोंके प्रति बोधकथाएँ लघु, सूक्ष्म, गहन, प्रहारक, पैनी, सांकेतिक अगाध श्रद्धा उत्पन्न की जा सकती है। आवश्यकता है और ग्राह्य होती हैं, अत: तत्काल प्रभावके लिये जानी इस हेतु योजनाबद्ध शिक्षण प्रबन्धन एवं निर्देशनकी। जाती हैं। बोधकथाएँ वास्तविकताकी पथरीली और अत: आजकी भागमभागवाली जीवन चर्यामें नैतिक कठोर राहपर चलनेवाले राहीको सोचनेके लिये मजबूर आचरणके लिये बालकोंका दिशाबोध बोधकथाओंके कर देती हैं। इन कथाओंमें पात्रोंकी संख्या कम होती माध्यमसे अधिक सार्थक सम्भव हो सकता है।

संख्या ३] संत-वचनामृत सत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे) 🕸 भगवान्के स्वरूप पिता-माता, ब्राह्मण, सन्त, जिसके मनमें विश्व-कल्याणकी भावना है, वही भगवत्-गुरुदेव, तुलसी, पीपल, मन्दिर तथा सब देवोंको प्रणाम प्रिय है। संसारी काम बन जायँ, सभी काम बन जायँ तभी करना चाहिये। शरीरसे साष्टांग अथवा वाणीसे प्रणाम हम भगवत्कृपा मानें — यह ठीक नहीं है। बहुत काम ऐसे यह भी सम्भव न हो तो मन-ही-मनसे नमस्कार कर हैं, जिनका बिगडना भी हमारे कल्याणके लिये है। कामके लेना चाहिये। इस प्रकार भक्तिसे युक्त जिसका जीवन बननेसे या बिगड़नेसे कल्याण होगा-इस बातको हम है, वह मुक्तिदाता श्रीकृष्णके चरणोंको, प्रेमको पानेका नहीं जान सकते हैं। यह प्रभुको ही पता है। भगवत्कृपा अधिकारी है। उसे भक्ति अवश्य प्राप्त होती है। राजा और प्रारब्धपर विशेष विश्वास रखना चाहिये। हमारी दुष्टिमें बलिने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया, अन्तमें भगवानुने थोड़ा समय है, ईश्वरकी दृष्टिमें अनन्त समय है। और देवताओं-ऋषियोंने बड़ाई की। 🕸 कुपामय प्रभुकी कुपा तो निरन्तर बरस ही रही है, पर हम लोग उसका सम्यक् प्रकारसे अनुभव नहीं कर 🕸 भक्तोंके लिये भगवान् सर्वदा सर्वत्र कृपा करते पाते हैं। सारे अनर्थोंका मूल अहंकार है, वही ज्ञान-भक्तिकी हए दिखायी पडते हैं। भक्त और अभक्त दोनोंपर प्रभ् कृपा करते हैं। भक्तोंको प्रेमकर और दुष्टोंको मारकर प्रभु प्राप्तिमें बाधक है। प्रभु कृपा करके उसको नष्ट करते हैं, मोक्ष देते हैं। पतिव्रताका मन पतिकी ओर, कृपणका मन उस समय हम अज्ञानी जीव काल-कर्म-ईश्वरको भी दोष धनकी ओर, विषयीका मन विषयोंकी ओर जैसा लगता देने लग जाते हैं। जो कृपाश्रयीजन हैं, वे ही अनुभव करते है, उसी प्रकार भक्तका मन भगवानुकी ओर लगता है। हैं कि हमको जो कष्ट मिला है, वह या तो अहंकारको ऐसी मनकी लगनसे भगवानुकी कृपाका प्रत्यक्ष दर्शन कम करनेके लिये है अथवा मिटानेके लिये है। भगवान होता है। जटायुपर कृपा करते समय भगवान्ने कहा-जो भी करते हैं, उससे भक्तोंका कल्याण ही होता है। लक्ष्मण! शरणागतरक्षक, धर्मपरायण, शुरवीर सर्वत्र 🔅 शरीरके स्वस्थ रहनेकी अपेक्षा मनके स्वस्थ मिलते हैं, यहाँतक कि पशु-पिक्षयोंकी अधम योनियोंमें रहनेकी महिमा अधिक है। मेरा मन प्रभुकी कृपाका किंचित् अनुभव करता है, उसीसे प्रसन्न रहता है। भी। देखा! जटायु महान् भक्त और धर्मात्मा हैं, तात्पर्य यह है कि भक्त सर्वत्र हैं। शरीरका धर्म है पैदा होना, बढ़ना, क्षीण होना एवं नष्ट हो जाना। इन्हें हम लोग रोक नहीं सकते हैं, अत: जैसी 📽 मुए सकल मिरहैं सकल घरी पलक के बीच। स्थिति हो प्रभुका स्मरण करते रहें, यही अपना कर्तव्य तुलसी काहु नहिं लही गीधराज सी मीच॥ जो पैदा हुए हैं, वे अवश्य ही मरेंगे; चाहे अब है। इसमें भी प्रभुकुपाकी आवश्यकता है। चाहे घण्टाभर बाद अथवा सौ वर्ष बाद यानी सभी मरे 🔅 भगवत्कृपाका अनुभव करना चाहिये। यह हैं, आगे भी मरेंगे, परंतु जटायुकी-सी मृत्यु किसीको भी सबसे सरल साधन है। भजन-पूजन आदि जितने साधन नहीं मिली। प्रभुकी गोदमें प्रभुको देखते हुए मृत्यु हुई। हैं, उनमें कठिनाई है। सामग्री-संचय-विधिका भी धन्य भक्त जटायु! धन्य भक्त जटायु!! कुछ-न-कुछ पालन अनिवार्य हो जाता है, पर कृपाका 🔅 हमारा स्वभाव है कि अनुकूलतामें भगवत्कृपा मनमें अनुभव करना इससे अति सरल है। मानते हैं और प्रतिकूलतामें नहीं। किंतु सन्त अनुकूलता तुलसीदाससे पूछा गया कि अबतकके भजन-एवं प्रतिकुलतामें सर्वत्र भगवत्कुपाका ही अनुभव करते साधनसे आपको क्या मिला? तो उन्होंने कहा कि— हैं। ईश्वर दयामय है, करुणामय है, कभी किसी जीवका जाकी कृपा लवलेस ते मितमंद तुलसीदासहँ। अहित नहीं करता है। कदाचित् जीवको शुद्ध करनेके पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥ लिये प्रभु दण्ड देते हैं। प्रभुकी लेशमात्र कृपासे मुझ मितमन्दको परम 捻 भगवत्-स्मरणसे सभी विघ्न दूर हो जाते हैं। विश्राम प्राप्त हुआ। ['परमार्थके पत्र-पुष्प'से साभार]

जीव-शिक्षा-सिद्धान्त

[स्वामी श्रीहरिदासकृत अष्टादश पद] [गतांकसे आगे]

भावार्थ—इस असत्, भ्रमरूप जगत् संसारसे प्रीति—

चतुर्दश पद प्रेम करके देख लिया। जगत्में गटीका कोई नहीं है। कोई झूठी बात साँची करि दिखावत हो हरि नागर।

निसिदिन बुनत उधेरत जात प्रपंच कौ सागर॥

ठाट बनाइ धर्त्यौ मिहरी कौ हे पुरुष ते आगर।

सुनि हरिदास यहै जिय जानौ सुपने कौ सौ जागर॥

भावार्थ—अहो हे हरि! अर्थात् सबके मनको हरनेवाले। हे नागर चतुरिशरोमणि! हम आपकी चतुराई

बताते हैं कि आप झूठी बात माने मिथ्या जो संसार है,

उसे साँची करि दिखावत अर्थात् सत्य प्रतीत कराते हो। इस प्रपंचकौ अर्थात् विश्वको दिनमें बनाते हो और

रात्रिमें नाश करते हो। अर्थात् जब ब्रह्माका दिन होता है, तब सृष्टि होती है और जब ब्रह्माकी रात होती है,

तब प्रपंच—संसार तिरोहित हो जाता है—मिट जाता है। सो आप इस प्रपंचके सागर हो-न जाने कितने प्रपंच आपके भीतर भरे हैं।

हे पुरुष! तुम्हारी जो मिहरी माया है, उसके द्वारा आपने यह ठाट—विश्व बनाकर धस्यौ—धारण कर रखा है। आपकी सत्तासे ही यह संसार है। सो आप बडे आगर—

चतुर, श्रेष्ठ हो। रसिक अनन्य कमल-कुल-दिवाकर श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज कहते हैं कि साधक! तू

श्रीहरिका दास है, तूने उनकी शरण ली है, तो सुन, अपने जियमें यही जान कि यह सब संसार स्वप्नसे जागनेके

समान है। जैसे मनुष्य सत्यरूपमें सोता हुआ भी स्वप्नमें अपना जागना देखता है; परंतु उसका वह जागना मिथ्या है; क्योंकि

वास्तवमें वह सो ही रहा है। ऐसे ही शुभ-अशुभमय संसार सत्यके समान प्रतीत होता हुआ भी वास्तवमें

पंचदश पद जगत प्रीति करि देखी नाहिंने गटी कौ कोऊ।

मिथ्या ही है।

छत्रपति रंक लौं देखै प्रकृति विरोध बन्यौ नहिं कोऊ॥

ऐसा नहीं है, जिससे प्रीतिकी—प्रेमकी गाँठ बँध जाय, बँध सके। छत्रपति—सम्राट् राजा सों लेकर रंक—अकिंचन,

दीन-हीन, गरीब, भिखारीतक देख लिये, परंतु सब प्रकृति-विरुद्ध हैं—एककी प्रकृति एक सों बनती नहीं है। कोई भी प्रकृतिके विरुद्ध बना नहीं है। त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके विरुद्ध

किसीकी भी रचना नहीं हुई। अर्थात् जब जगत्की कारणभूत प्रकृति ही गुण विषमतासे युक्त है, तब उसके कार्य जगतुमें

समानता कैसे हो सकती है? और जहाँ समानता नहीं, वहाँ प्रीति कहाँ ? वहाँ प्रीति—मित्रता कैसे हो सकती है ? ऐसे देखते हुए बहुत—असंख्य जन्मोंके जो दिन बीत गये, वैसे अब एक दिन भी वृथा मत जाय। रसिक अनन्य नृपति

श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज कहते हैं कि 'सूनो, हमें तो प्रेम-रस-माधुर्यनिधि श्रीविहारीजी अच्छे मित्र मिल गये। जैसे हमें श्रीविहारीजी भले-अच्छे मिले, ऐसे सबको मिलें, सब कोई पाओ, सबके ऊपर कृपा करें, यह आपका सबको

लोग तौ भूलै भलै भूलैं तुम जिनि भूलौ माला धारी।

आशीर्वाद है।

अपनौ पति छाँड़ि औरनि सौं रति ज्यौं दारनि में दारी॥ कहत ते जीव मोतें विमुख

जिन दूसरी करि डारी। किं श्रीहरिदास जज्ञ देवता पितरिन कौं श्रद्धा भारी॥

षोडश पद

भावार्थ-अनादि कर्मात्मक अविद्यारूप मायासे विवश, मुग्ध अज्ञानी साधारण लोग—मनुष्य श्रीहरिको

भूल रहे हैं, तो वे भले ही भूलें—भूला करें; क्योंकि जिनको भगवान् श्रीहरिका माहात्म्य (महिमा)-ज्ञान नहीं, जो श्रीहरिके स्वरूप, प्रभाव, गुण, महिमा आदिको जानते

नहीं, उनसे हम क्या कहें ? वे तो अन्ध, मूढ, विषयासक्त,

विमुग्ध प्राणी हैं। परंतु हे माला धारण करनेवाले जनो! हे दिन जो गये बहुत जन्मिन के ऐसे जाऔ जिनि कोऊ।

. –	·						
_{ष्टि} इंडि. चुके हो। तुम तो श्रीहरिको मत भूलो तथा	_{ष्ठकष} क्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक						
अपने स्वरूपको भी मत भूलो; क्योंकि अपने स्वरूपको	अथवा हबड़-हबड़में तू क्या लादकर ले जायगा?						
जाने बिना श्रीहरिको कैसे भजोगे ?	अर्थात् भगवद्भजनयोग्य अमूल्य समयको व्यर्थकर, क्लेश						
अपनौ पति श्रीहरि, उनको छोड़कर और देवान्तर	सहकर वस्तुएँ इकट्ठी करीं—कोई झूठ बोलकर, कोई						
(देवता, पितर आदि) सों रित (प्रीति) करनेमें निन्दा है।	धोखा देकर, ऐसे हायतोबा सों जो सांसारिक वस्तुएँ						
जैसे असत् स्त्री पतिव्रतधर्मको न पालनकर अपने पतिको	संग्रह करीं, क्या उनको तू लादकर संग ले जायगा?						
छोड़कर परपुरुषसे रित—प्रेम करती है, तो वह स्त्री	अर्थात् वे सब यहीं धरी रह जायँगी और तू चल बसेगा।						
दारिन व्यभिचारिणी, कुलटा, वेश्या कहलाती है। ऐसे	इसलिये सांसारिक वस्तुओंकी लिप्सा—इच्छा मत कर।						
ही उस पुरुषकी निन्दाको जानना चाहिये, जो फलकी	धन, गुण और यौवन आदिके मिथ्या मद—						
कामनासे श्रीहरि सौं विमुख होकर अन्य देवतान्तरमें	अभिमानमें पड़कर प्राणी—मनुष्य भगवान्को भूल गया						
आसक्त है।	और नगर—संसारके विवादमें भूल रहा है, फँस रहा है।						
श्याम—श्रीविहारीजी कहते हैं कि जिन जीवोंने	इस पंक्तिमें पाठान्तर है— <i>धन मद जोवन राज</i>						
मेरा सम्बन्ध छोड़कर मेरा भजन छोड़कर फलकी	मद भूल्यौ नगर विवादि। धन, यौवन, राज्यादि						
कामनासे अन्य दूसरे देवतादिक सों सम्बन्ध जोड़ लिया,	विभूतियोंके मिथ्या मद—अभिमानमें पड़कर प्राणी मनुष्य						
उनका भजन किया; वे जीव मुझसे विमुख हो गये।	भगवान्को भूल गया और नगर—संसारके विवादमें भूल						
श्री अर्थात् प्रियाजी और हरि यानी श्रीविहारीजी,	रहा है, फँस रहा है। अथवा विवाद—बहस, झगड़ा,						
उनके दास-रसिक-अनन्य मुकुटमणि श्रीस्वामी हरिदासजी	प्रपंचके नगरमें पड़ा हुआ भूल रहा है, फँस रहा है।						
महाराज कहते हैं कि इनकी यज्ञ, प्राकृत देवता और पितरोंमें	अर्थात् पूर्वोक्त जो मद हैं, वे परमेश्वरसे बहिर्मुख						
तो भारी बहुत बड़ी श्रद्धा है, जो कि क्षणिक, आपातरमणीय	करानेवाले अनर्थोंके—दोषोंके मूल हैं। इसलिये उनका						
सुखको देनेवाले हैं, और जो परात्पर, परमसुखस्वरूप	मद—अभिमान मनमें न लाना चाहिये।						
पुरुषोत्तम श्रीहरि—श्रीविहारीजी हैं, उनसे विमुख हो रहे	रसिक अनन्य नृपति श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज						
हैं। सो हे वैष्णवो! मालाकण्ठी धारण करनेवाले जनो!	कहते हैं कि भगवद्भजन भी करता है और फिराद—						
् तुम गुरु-गोविन्द (गोविन्दस्वरूप गुरु) सों श्रीकृष्ण-	फरियाद—प्रार्थना, पुकार भी करता है, परंतु लोभ है—						
पन्त्रोपदेश ग्रहण कर चुके हो, सो तुम्हारा भूलना अनुचित है।	लोभासक्त है, तो उस लोभने चरपट—नाश कर दिया है,						
सप्तदश पद	इससे फिराद क्यों लगे? अर्थात् प्रार्थना स्वीकार नहीं						
जोलौं जीवै तौलौं हरि भजि रे मन और बात सब बादि।	होती है।						
द्यौस चारि के हलाभला में तू कहा लेयगौ लादि॥	अथवा श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज कहते हैं कि						
माया मद गुन मद जोवन मद भूल्यौ नगर विवादि।	यदि लोभ—लोभादि—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद,						
किं श्रीहरिदास लोभ चरपट भयौ काहे की लगै फिरादि॥	मत्सरादि ये चरपट—नाश हो गये, तो फिराद क्यों लगे,						
भावार्थ —रे मन! अरे मन! जबतक जीवन है, जीवित	किसलिये लगे ? अर्थात् प्रार्थना करनेकी जरूरत ही नहीं						
है, तबतक केवल श्रीहरिका भजन ही कर। भजनके अतिरिक्त	पड़ती, फिर तो परमेश्वर स्वयं ही कृपा करते हैं।						
और सब बातें विवादमात्र हैं, अर्थात् त्याज्य हैं, व्यर्थ हैं।	इसलिये लोभादिकोंका सर्वथा परित्याग करना चाहिये।						
अथवा जबतक जीवन है, तबतक ऐसा नियम कर कि	अथवा श्रीस्वामीजी महाराज कहते हैं कि एक						
पहले हरिका भजन करना, उसके बाद और कुछ बात	दिन तेरी ये लोभनीय सब वस्तुएँ नष्ट हो जायँगी, तब						
करना, अन्य सब बातें करना।	फिर तेरी कोई फिराद नहीं लगेगी। इसलिये लोभादिका						

बाट ? अर्थात् उनको तो जानकार कहना ही कहाँ सम्भव सर्वथा—सब प्रकारसे त्याग कर देना चाहिये। है ? अर्थात् उनको जानकार ही नहीं कह सकते हैं; क्योंकि अष्टादश पद बाट—उनका मार्ग साधन भी ठीक नहीं है। प्रेमी-रसिक प्रेम समुद्र रूप रस गहरे कैसे लागै घाट। जानकारजनोंका प्रेममार्ग कैसा होता है, यह भी उन्हें ज्ञात बेकास्यौ दै जान कहावत जानपन्यौ की कहाँ परी बाट।। नहीं है। तो उन्हें ज्ञाता कैसे कह सकते हैं? जिसका काहू को सर सूधौ न परै मारत गाल गली गली हाट। साधन सिद्ध होता है, उसीको ज्ञाता कह सकते हैं। कहिं श्रीहरिदास जानि ठाकुर बिहारी तकत ओट पाट॥ जब सच्चे प्रेमके विकार ही नहीं हैं और मार्ग-भावार्थ — प्रेम महासमुद्र है, जिसमें रूप-रस साधनपथ भी ठीक नहीं है, तभी तो किसीका सर माने जलको अति गहराई—गम्भीरता, अथाह है। अर्थात् जहाज सूधा नहीं पड़ता है, अर्थात् ठिकानेपर नहीं रूपरसके कहर-भीषण भँवरमें कोई पड जाय तो पहुँचता है। अथवा तभी तो किसीका सर माने तीर सूधे उसमेंसे निकल नहीं सकते हैं। तब कैसे लागै घाट— पार कैसे हो सकते हैं? अर्थात् पार नहीं पहुँच सकते। लक्ष्यपर नहीं पड़ता है। केवल अपनेको प्रेमी-रसिक-ज्ञानी—जानकार जताने—समझानेके लिये गली-गली अर्थात् पहँचनेकी शक्ति-सामर्थ्य ही नहीं है। बीचमें ही और हाट-बाजारमें, अर्थात् अपने-अपने मार्गमें, अपने-डूब जाते हैं। जो भी डूबे, फिर वह उछल नहीं सके। अपने स्थानमें गाल बजाते-फिरते हैं, माने वितण्डावाद परंतु पार पहुँचे बिना रत्नाकर (समुद्र)-मेंसे रत्न कौन निरर्थक तर्क, बहस करते हुए अपने पक्षकी स्थापना प्राप्त कर सकता है? अर्थात् जो महासमर्थ तैराक है, करते फिरते हैं, प्रेमकी चर्चा या प्रदर्शन करते डोलते हैं। वही डुबकी लगाकर रत्न ला सकता है। इसीलिये उनका साधन ही ठीक कहाँ है? इसी प्रकार यह रूप-रस-जलसे परिपूर्ण रसिक अनन्य नृपति श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज अति गम्भीर प्रेमसमुद्र नित्य किशोर दम्पती श्रीश्यामा-कहते हैं कि 'सब वस्तुओंके सामान्यतः और विशेषतः श्याम श्रीकुंजविहारी-कुंजविहारिणीके नित्य विहार रसरूप जाननेवाले ठाकुर (प्रभु, ईश्वर) श्रीविहारीजी हैं। वे पाट अद्भृत रत्नोंसे अनन्त, अखण्ड, असीम और परिपूर्ण है। यानी आच्छादक वस्त्रादिककी ओट अर्थात् आड देकर रसिक अनन्य नृपति श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज और तकत—सबको देख रहे हैं। अर्थात् मायारूप चिक जीव

उनके अनुगत रिसक अनन्यजन ही इस अद्भुत सरस और ईश्वरके बीच पड़ी है। जैसे चिकके भीतर बैठा रत्नाकरमें निर्भय नि:शंकतापूर्वक अवगाहन करते हैं और हुआ मनुष्य बाहरके सब व्यक्तियोंको देखता है, किंतु दम्पती-सम्पतीरूप (नित्यविहाररूप) अद्भुत रत्नोंको निकालकर लाते हैं तथा उनका अनुभवास्वादनकर, परखकर उनसे दम्पती श्रीप्रियालालको अलंकृतकर लाङ् करते हैं। इनके अतिरिक्त और तो समुद्रके निकट पहुँचते ही गोता लगा बैठते हैं, डूब जाते हैं। बेकार्चो दै विकारोंके उदयमात्रसे अर्थात् नेत्रोंमें अश्रुजल, शरीरमें पुलक, रोमहर्ष, कम्प, गद्गद और चित्तमें आर्द्रता यानी द्रवितता आदि ये प्रेमके चिह्न

विकारोंको प्रेम नहीं कहते हैं।

बाहरके व्यक्ति उसको नहीं देख सकते। ऐसे ही मायारूप चिकके भीतर स्थित ईश्वर सबको देखते हैं और उनको कोई नहीं देख सकते। अथवा ठाकुर श्रीकुंजविहारी सब बातें भली प्रकारसे जानते हैं; क्योंकि वे हृदयके परदेके भीतर बैठे हुए देख रहे हैं।

भाग ९४

अथवा प्रेम-रसका स्वरूप जानना चाहते हो तो अपने भावरूप परदेको हटाकर ठाकुर श्रीविहारीजीसे दिखाकर अपनेको प्रेमतत्त्वका जानकार कहते हैं अर्थात् भाव जोड़ो और उनको देखो, उनके प्रेम-रसके स्वरूपको ऐसे चिह्न देखकर सामान्यजन यह कहते हैं कि ये प्रेमके जानो, पहचानो। वे सबके शासक—ईश्वर होते हुए भी ज्ञानी महात्मा हैं। परंतु प्रेमी रसिक विज्ञजन उनके प्रेमके अपनी प्राणप्रियाकी रुचिको लिये हुए सदा-सर्वदा एकरस अपने नित्य केलि-विहार रसमें मग्न—तत्पर जिनके प्रेमके आभासमात्र विकार हुए, साँचे, शुद्ध रहते हैं, उनका सेवन करते हैं। [समाप्त] प्रेमकी प्राप्ति नहीं हुई, उनको जानपन्यौकी कहाँ परी

प्यासी गौको जल पीनेसे रोकनेके कारण पुत्रहीनता संख्या ३] प्यासी गौको जल पीनेसे रोकनेके कारण पुत्रहीनता प्राचीनकालकी बात है, द्वापरयुगके प्रारम्भका हो जाते हैं। मुने! अब हमें उस उपायका उपदेश समय था, माहिष्मतीपुरीमें राजा महीजित् अपने राज्यका कीजिये, जिससे राजाको पुत्रकी प्राप्ति हो। पालन करते थे, किंतु उन्हें कोई पुत्र नहीं था। अपनी उनकी बात सुनकर महर्षि लोमश दो घड़ीतक अवस्था अधिक देख राजाको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने ध्यानमग्न हो गये। तत्पश्चात् राजाके पूर्वजन्मका वृत्तान्त जानकर उन्होंने कहा—'प्रजावृन्द! सुनो—राजा महीजित् प्रजावर्गमें बैठकर इस प्रकार कहा—'प्रजाजनो! इस जन्ममें मुझसे कोई पातक नहीं हुआ। मैंने अपने पूर्वजन्ममें मनुष्योंको चूसनेवाला धनहीन वैश्य था। वह वैश्य गाँव-गाँव घूमकर व्यापार किया करता था। एक खजानेमें अन्यायसे कमाया हुआ धन नहीं जमा किया है। ब्राह्मणों और देवताओंका धन भी मैंने कभी नहीं दिन जेठके शुक्लपक्षमें दशमी तिथिको, जब दोपहरका सूर्य तप रहा था, वह गाँवकी सीमामें एक जलाशयपर लिया है। प्रजाका पुत्रवत् पालन किया, धर्मसे पृथ्वीपर अधिकार जमाया तथा दुष्टोंको, वे बन्धु और पुत्रोंके पहुँचा। पानीसे भरी हुई बावली देखकर वैश्यने वहाँ समान ही क्यों न रहे हों, दण्ड दिया है। शिष्ट पुरुषोंका जल पीनेका विचार किया। इतनेहीमें वहाँ बछड़ेके साथ सदा सम्मान किया और किसीको द्वेषका पात्र नहीं एक गौ भी आ पहुँची। वह प्याससे व्याकुल और तापसे समझा। फिर क्या कारण है, जो मेरे घरमें आजतक पुत्र पीडित थी; अत: बावलीमें जाकर जल पीने लगी। उत्पन्न नहीं हुआ। आपलोग इसका विचार करें।' वैश्यने पानी पीती हुई गायको हाँककर दूर हटा दिया राजाके ये वचन सुनकर प्रजा और पुरोहितोंके साथ और स्वयं पानी पीया। उसी पाप-कर्मके कारण राजा ब्राह्मणोंने उनके हितका विचार करके गहन वनमें प्रवेश इस समय पुत्रहीन हुए हैं। किसी जन्मके पुण्यसे इन्हें किया। राजाका कल्याण चाहनेवाले वे सभी लोग इधर-अकण्टक राज्यकी प्राप्ति हुई है।' उधर घुमकर ऋषिसेवित आश्रमोंकी तलाश करने लगे। प्रजाओंने कहा-मुने! पुराणमें सुना जाता है कि इतनेहीमें उन्हें मुनिश्रेष्ठ लोमशजीका दर्शन हुआ। प्रायश्चित्तरूप पुण्यसे पाप नष्ट होता है; अत: पुण्यका उपदेश कीजिये, जिससे उस पापका नाश हो जाय। लोमशजी धर्मके तत्त्वज्ञ, सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशिष्ट विद्वान्, दीर्घायु और महात्मा हैं। वे महामुनि तीनों लोमशजी बोले—प्रजाजनो! श्रावणमासके शुक्लपक्षमें कालोंकी बातें जानते हैं। उन्हें देखकर सब लोगोंको जो एकादशी होती है, वह 'पुत्रदा'के नामसे विख्यात बडा हर्ष हुआ। माहिष्मतीपुरीके लोगोंको अपने निकट है। वह मनोवांछित फल प्रदान करनेवाली है। तुमलोग आया देख लोमशजीने पूछा—'तुम सब लोग किसलिये उसीका वृत करो। यहाँ आये हो ? अपने आगमनका कारण बताओ। तुमलोगोंके यह सुनकर प्रजाओंने मुनिको नमस्कार किया और लिये जो हितकर कार्य होगा, उसे मैं अवश्य करूँगा।' नगरमें आकर विधिपूर्वक पुत्रदा एकादशीके व्रतका प्रजाओंने कहा—ब्रह्मन्! इस समय महीजित् नामवाले अनुष्ठान किया। उन्होंने विधिपूर्वक जागरण भी किया जो राजा हैं, उन्हें कोई पुत्र नहीं है। हमलोग उन्हींकी और उसका निर्मल पुण्य राजाको दे दिया। तत्पश्चात् प्रजा हैं, जिनका उन्होंने पुत्रकी भाँति पालन किया है। रानीने गर्भ धारण किया और प्रसवका समय आनेपर उन्हें पुत्रहीन देख, उनके दु:खसे दुखित हो हम तपस्या बलवान् पुत्रको जन्म दिया। करनेका दृढ़ निश्चय करके यहाँ आये हैं। द्विजोत्तम! इस पौराणिक वृत्तान्तसे यह सिद्ध होता है कि राजाके भाग्यसे इस समय हमें आपका दर्शन मिल गया गोमाताकी अवहेलनासे सन्तानहीनता और उनकी कृपासे है। महापुरुषोंके दर्शनसे ही मनुष्योंके सब कार्य सिद्ध सन्तानकी प्राप्ति होती है। [पद्मपुराण]

उदासीनाचार्य श्रीश्रीचन्द्रजी महाराज

(स्वामी श्रीसर्वदानन्दजी महाराज, दर्शनरत्न)

उदासीन-सम्प्रदायके प्रवर्तक भगवान् श्रीश्रीचन्द्रजी योगशक्तिके प्रभावसे हिन्दुओंकी रक्षा की। जहाँ-जहाँ आपने

महाराजका आविर्भाव सं० १५५१ भाद्रपद शु० ९ को

तलवण्डी नामक गाँवमें, जो लाहौरसे ३० कोस पश्चिम

बने हुए हैं। उसी समय सिन्धके हिन्दुओंपर भी यवनोंका

बड़ा भारी अत्याचार हो रहा था। वहाँके ठट्ठा नामक नगरमें है तथा आजकल जिसको ननकाना कहते हैं, क्षत्रिय-

यह हालत थी कि हिन्दूलोग मन्दिरोंमें आरती करते समय

कुलभूषण श्रीनानकदेवजीकी धर्मपत्नी श्रीसुलक्षणादेवीके

जिस समय आप इस पृथ्वीतलपर आविर्भूत हुए,

उसी समय आपका शिशु-शरीर जटा-भस्मादिसे विभूषित

था और ज्यों-ज्यों वह बड़ा हुआ, त्यों-त्यों आपने जो

एक-से-एक अद्भुत चमत्कार दिखलाये, उनको देख-

सुनकर लोगोंको यह पक्का विश्वास हो गया कि आप

कोई अलौकिक महापुरुष हैं, तथा विषयान्ध जीवोंके

उद्धारार्थ ही आपका इस मर्त्यलोकमें पधारना हुआ है।

यथासमय आपका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न हो गया और आप विद्याध्ययनके लिये काश्मीर भेज दिये गये। वहाँ

आपने अल्पकालमें ही वेद-वेदांगोंका विधिवत् अध्ययन कर लिया और जब आप ब्रह्मचर्याश्रमका पालन करते हुए

सकल शास्त्रनिष्णात हो गये, तब अर्थात् सं० १५७५की

आषाढी पूर्णिमाको काश्मीरमें ही आपने सद्गुरु स्वामी

श्रीअविनाशिरामजीसे उदासीन-सम्प्रदायानुसार दीक्षा ले

ली। तत्पश्चात् कुछ दिनोंतक गुरुदेवकी ही सेवामें रहकर

आप उनके उपदेशामृतका पान करते रहे। जब आपने

धर्मोद्धारका समय देखा तब भारतभ्रमणके लिये निकल

पड़े, उत्तर भारतसे लेकर दक्षिण भारतके प्राय: समस्त तीर्थोंका आपने परिभ्रमण किया और अपने उपदेशोंद्वारा

धार्मिक जगत्में एक नवीन जागृति फैला दी। फिर अन्य

स्थानोंमें भी जा-जाकर आपने कितने पाप-परायण जीवोंका

उद्धार किया, इसकी कोई गणना नहीं की जा सकती।

चले गये और वहाँ जाकर आपने वेद-भाष्योंकी रचना की।

तत्पश्चात् आपका पदार्पण पेशावर तथा काबुलकी ओर

हुआ। उधरके यत्किंचित् हिन्दुओंका जीवन विधर्मियोंके

कुछ समयके अनन्तर आप फिर काश्मीरकी ओर

गर्भसे हुआ था। यवनोंके भयसे घण्टा-शंख भी नहीं बजा पाते थे और

दनानिरोत्तांक्रम्पाःश्वराधिक क्षेत्रका निर्मेतृङ्गायोंष्ठर. व्युप्तयी त्राभीत्र उन्हों से भी विश्लान निद्य किए विषय Avinash/Sha

हिन्दुओंको रक्षा की, वहाँ-वहाँपर अबतक आपके स्मारक

खुलेआम पाठ-पूजा तो बन्द थी ही। यह सुनकर आप शीघ्र

ही वहाँ पहुँचे और अपने योगबलसे वहाँके राजाको परास्त

करके आपने हिन्दुओंको धार्मिक स्वतन्त्रता दिलायी। इसी

प्रकार आपने जहाँगीर बादशाहको भी एक बार अपने योगबलका

परिचय देकर प्रभावित किया था और काबुलके वजीर खाँ

नामक मुसलमानपर तो आपकी योगशक्तिका प्रभाव जादूकी

तरह पड़ा था। वह आपके उपदेशोंके प्रभावसे भगवान् श्रीकृष्णका अनन्य भक्त बन गया और 'हे कृष्ण विष्णो

मध्केटभारे 'की ध्वनि लगाने लगा। तात्पर्य यह कि आपने लोकहितके लिये थोडे नहीं, असंख्य चमत्कार दिखलाये

और अपनी कीर्ति-ध्वजाको सारे देश-देशान्तरोंमें फहरा

दिया। स्थानाभावके कारण आपकी अन्य अलौकिक

लीलाओंका वर्णन यहाँ नहीं आ सकता और न आपके

बहुमूल्य उपदेश ही यहाँ दिये जा सकते हैं। जिन्हें आपके

जीवनकी अनन्त घटनाओं तथा आपके दिव्य उपदेशोंको

जानना हो, उन्हें श्रीचन्द्रप्रकाश, उदासीनधर्मरत्नाकर,

उदासीनमंजरी प्रभृति ग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिये। उदासीन-सम्प्रदायके प्रचारद्वारा सनातन-धर्मका दिग्विजय

कराते हुए आप १५० वर्षतक इस धराधामपर विद्यमान रहे;

परंतु फिर भी वृद्धावस्था आपके पास फटकीतक नहीं। आप

अपने योगबलसे सदा नौजवान ही बने रहे। जब आपके

निर्वाणका अवसर आया तब आप चम्बाकी पार्वत्य गुफाओंमें

जाकर तिरोहित हो गये, इसी कारण आपकी निर्वाणतिथिका

ठीक-ठीक पता नहीं चलता। ठट्ठा, वारहठ, श्रीनगर, कान्धार

और पेशावर—ये पाँच आपके मुख्य निवासस्थान थे। आपके

बाद आपके अनेकों शिष्य भी बड़े-बड़े सिद्ध तथा सन्त हुए

व्रतोत्सव-पर्व

व्रतोत्सव-पर्व

				•		
सं० २०७	७, शक	१९४२,	सन् २	१०२०,	सूर्य	उत्तरार

शनि

बुध

गुरु

शुक्र

रवि

सोम

मंगल

बुध

गुरु

वार

शुक्र

शनि

रवि

सोम

मंगल

बुध

गुरु

शुक्र

शनि

रवि

सोम

मंगल

बुध

गुरु

पंचमी 😗 १०।२४ बजेतक रिव 🛭 ज्येष्ठा 🕠 १२।७ बजेतक 🛙 १२ 🕠

संख्या ३]

चतुर्थी " ११।५१ बजेतक

षष्ठी " ९।१९ बजेतक सोम

सप्तमी '' ८ । ४३ बजेतक

अष्टमी " ८।३८ बजेतक

नवमी " ९।३ बजेतक

दशमी " ९।५९ बजेतक

द्वादशी 🛷 १।६ बजेतक

त्रयोदशी 🕖 ३।६ बजेतक

चतुर्दशी रात्रिशेष ५ । १२ बजेतक

अमावस्या प्रात: ७।११ बजेतक

तिथि

प्रतिपदादिनमें ८।५५ बजेतक

द्वितीया 🗤 १० । १७ बजेतक

तृतीया '' ११।१३ बजेतक

चतुर्थी " ११ ।३८ बजेतक

पंचमी*"* ११।३१ बजेतक

षष्ठी '' १०।५३ बजेतक

सप्तमी 🗤 ९ । ४८ बजेतक

अष्टमी " ८ ।१९ बजेतक

नवमी प्रात:६ ।२९ बजेतक

एकादशी रात्रिमें २।६ बजेतक

द्वादशी 😗 ११।४१ बजेतक

त्रयोदशी '' ९ ।१४ बजेतक

चतुर्दशी सायं ६ ।४८ बजेतक

पूर्णिमा दिनमें ४।३० बजेतक

अमावस्या अहोरात्र

एकादशी 🚜 ११ ।२२ बजेतक 🛮 शनि

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य उत्तरायण						
तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक			
प्रतिपदा प्रात: ५। ५८ बजेतक	गुरु	स्वाती रात्रिमें ३।१२ बजेतक विशाखा // १।५३ बजेतक	९ अप्रैल			
तृतीया रात्रिमें १ ।३८ बजेतक	शुक्र	विशाखा 🗤 १।५३ बजेतक	१० ,,	भद्रा दिनमं		

अनुराधा " १२।५० बजेतक | ११ 🕠

मूल 🥠 ११।४८ बजेतक

उ०षा० 🕖 १२। ३८ बजेतक

धनिष्ठा रात्रिमें ३।२५ बजेतक

शतभिषा रात्रिशेष ५।५ बजेतक

पू०भा० प्रातः ७।५१ बजेतक

उ०भा० दिनमें १०। २६ बजेतक

अश्वनी 🗤 ३ । ३२ बजेतक

रेवती <table-cell-rows> १।४ बजेतक

नक्षत्र

भरणी सायं ५।४४ बजेतक

कृत्तिका रात्रिमें ७। ३४ बजेतक

रोहिणी 🗤 ८।५५ बजेतक

मृगशिरा 🗤 ९।४५ बजेतक

आर्द्रा 🗤 १०।५ बजेतक

पुनर्वसु 🕠 ९।५९ बजेतक

पुष्य रात्रिमें ९।२३ बजेतक

आश्लेषा ग८।३० बजेतक

मघा 😗 ७।१५ बजेतक

पू०फा० सायं ५।४९ बजेतक

उ०फा० दिनमें ४।१२ बजेतक

हस्त प्रातः ४। ३२ बजेतक

चित्रा 🗤 १२।५३ बजेतक

स्वाती 🕠 ११।२० बजेतक

पू०भा० अहोरात्र

श्रवण 🗤 १। ४७ बजेतक

| मंगल| पू०षा० 🗤 ११ । ५८ बजेतक |

ण, वसन्त-ऋतु, वैशाख कृष्णपक्ष

१३ ,,

१४ ,,

१५

१६ ,,

१७ ,,

१९

२०

२१

२२

२३

दिनांक

२५

२६

२७

२८ ,,

29 "

३० "

२ ,,

3 ,,

४ ,,

4

ξ ,,

6 ,,

१ मई

,,

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख-शुक्लपक्ष

अमावस्या

१८ "

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

रात्रिमें ८।१२ बजेसे।

रात्रिमें १२।५० बजेसे। धनुराशि रात्रिमें १२।७ बजेसे।

भद्रा दिनमें ९।० बजेतक।

भद्रा दिनमें ४। ९ बजेतक।

|२४ अप्रैल|**वृषराशि** रात्रिमें १२। १२ बजेसे।

सूर्य दिनमें २।४३ बजे।

मुल रात्रिमें ७। १५ बजेतक।

एकादशीव्रत(वैष्णव)।

आद्यजगद्गुरु श्रीशंकराचार्य-जयन्ती।

सिंहराशि रात्रिमें ८।३० बजेसे, श्रीसीतानवमी।

तुलाराशि रात्रिमें १।४१ बजेसे, भौमप्रदोषव्रत।

रात्रिमें ११।२५ बजेसे, मोहिनी एकादशीव्रत (स्मार्त्त)।

भद्रा सायं ६।४८ बजेसे, व्रतपूर्णिमा, श्रीनृसिंहचतुर्दशीव्रत।

श्रीबुद्धपूर्णिमा, श्रीबुद्धजयन्ती, वैशाख-स्नान समाप्त।

श्रीपरश्राम-जयन्ती।

मकरराशि प्रातः ६।८ बजेसे, श्रीशीतलाष्टमीव्रत।

भद्रा रात्रिमें ३।६ बजेसे, सोमप्रदोषव्रत।

दिनमें २।३५ बजेतक, पञ्चकारम्भ दिनमें २।३५ बजे। वरूथिनीएकादशीव्रत (सबका), श्रीबल्लभाचार्य-जयन्ती।

मीनराशि रात्रिमें १।६ बजेसे, सायन वृषराशिका सूर्य रात्रिमें १०।१० बजे।

मेषराशि दिनमें ४।९ बजेसे, पञ्चक समाप्त दिनमें १।४ बजे, श्राद्धकी अमावस्या

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा रात्रिमें ११। २६ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, अक्षयतृतीया।

भद्रा दिनमें ११।३८ बजेतक, मिथुनराशि दिनमें ९।२० बजेसे, भरणीका

कर्कराशि दिनमें ३।५९ बजेसे, श्रीरामानुजाचार्य-जयन्ती, श्रीगंगासप्तमी।

भद्रा दिनमें ९।४८ बजेसे रात्रिमें ९।४ बजेतक, मूल रात्रिमें ९।२३ बजेसे।

भद्रा दिनमें ३। १५ बजेसे रात्रिमें २। ६ बजेतक, कन्याराशि

भद्रा प्रातः ५। ३९ बजेतक, वृश्चिकराशि रात्रिशेष ४। १८ बजेसे,

भद्रा दिनमें २। ३९ बजेसे रात्रिमें १। ३८ बजेतक, वृश्चिकराशि

संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें १०। ० बजे, मूल

भद्रा रात्रिमें ९। १९ बजेसे, मेष-संक्रान्ति रात्रिमें १०। २८ बजे, वैशाखी, मूल रात्रिमें ११। ४८ बजेतक। खरमास समाप्त।

भद्रा दिनमें ९। ३१ बजेसे रात्रिमें ९। ५९ बजेतक, कुम्भराशि

साधनोपयोगी पत्र (१) मिला। आपने ब्राह्मण-जातिमें जन्म लिया है और आप व्याकरणके तीन खण्डोंमें उत्तीर्ण और चतुर्थमें अनुत्तीर्ण पुरुषका पाप हैं। फिर भी आपने यह बहुत बुरा काम किया है। किसी

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपके विचार पापपूर्ण हैं। आपको तुरंत अपनी भी व्यक्तिकी मलिन वासनाको जगानेमें सहायता करना—

चाल बदलनी चाहिये। निर्दोष स्त्रियोंपर होनेवाले इस

प्रकारके अत्याचारोंने ही स्त्रियोंके मनोंमें पुरुषोंके प्रति

घृणा उत्पन्न की है। पत्नीका यह धर्म कदापि नहीं है कि वह आपके पापमें सहायता करे। शराब पीये,

व्यभिचार करे और आपकी व्यभिचार-प्रवृत्तिमें सहायक

हो। आपका मानो कोई धर्म ही नहीं है। याद रखिये— स्त्री पुरुषकी गुलाम नहीं है, दासी नहीं है। वह

अर्धांगिनी है, सखी है। उसका भी अधिकार है। उसके भी मन है, उसकी भी अपनी इच्छाएँ हैं, उसका भी

अपना गौरव है। वह पत्थरकी शिला नहीं है। सुख-दु:खका अनुभव उसे भी होता है। आपका धर्म है— उसे सुख पहुँचाना, उसे मित्र मानकर उसको अपने

बराबर समझना, उसकी इच्छाको मान देना और उसको पापमें प्रवृत्त करनेकी बात तो कभी सोचना ही नहीं। स्त्री-पुरुष एक-दूसरेके पूरक हैं। आपका जो बर्ताव

अपनी पत्नीके प्रति है और उसे आप पत्नीके पातिव्रत्य धर्मके नामपर न्याययुक्त सिद्ध करना चाहते हैं, यह आपकी और भी हृदयहीनता है। इससे आप बड़ा धोखा खायेंगे। उसके साथ सद्व्यवहार करके उसके हृदयका

मूक आशीर्वाद लीजिये। जहाँ स्त्री दुखी होकर रोती है, वह घर नष्ट हो जाता है। और जो पुरुष हृदयहीन होकर

पत्नीको दु:ख देता है, उसे अगले जन्मोंमें विधवा स्त्री होकर विविध दु:ख भोगने पड़ते हैं। सावधान हो जाइये। शेष भगवत्कृपा।

(२)

पापको घटाइये

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र

बहन-भाई किसीसे प्रेम नहीं है, सो ठीक ही है। विषयवासनामें फँसे हुए मनुष्यमें प्रेम कहाँ रहता है। वह तो अन्धा है। आपकी पत्नी अच्छी है, उससे ढाई

सालकी एक बच्ची है, पर वह पत्नी आपको पैसेभर भी पसन्द नहीं है-यह आपका दुर्भाग्य है। जो कुछ हो, अब जबिक आपने उस विधवा बहनके साथ भी विवाह

हो गया है। किसीके जीवनको बिगाड़कर उसे छोड़ देना भी पाप है, अवश्य ही अभी तो आप छोड भी नहीं सकते। वासनाकी बाढ़में बह जो रहे हैं। तथापि आपका

यह लिखना कि 'में लोभ-लालचमें फँसकर इस ब्राईमें

फँस गया। पर अब तो वह उम्मीद भी खत्म हो रही है।' इससे यह अनुमान होता है कि आपने उस विधवासे कुछ और भी लाभ उठानेकी आशा की होगी और अब वह नहीं पूरी होती दीखती है, तब ऐसी बातें आपके

कर लिया है, तब उसको निबाहना भी आपका कर्तव्य

सो भी अपने इन्द्रियसुखके लिये-मनुष्यकी बड़ी

नीचाशयता है। उस विधवा बहनको आप सगी बहन

मानकर उसकी सहायता करते, उसे इन्द्रियदमनके शुभ

मार्गमें प्रेरित करते तो वह आपका धर्म था, पर आपने

बड़ी भूल की। तन-मन-धनका अर्पण तो भगवान्के प्रति होना चाहिये। यह अर्पण नहीं, वासनाकी गुलामी

है, मोहवश अपनेको पतनके गर्तमें गिराना है। घर-

परिवारके लोग इस बातसे नाराज हैं और आपको

समझाते हैं तथा आपके न माननेपर विरोध करते हैं, सो

उनका विरोध करना उचित ही है। आपका अपनी माँ-

मनमें आने लगी हैं। यह बड़ी नीची मनोवृत्ति है। मेरी रायमें आप अब दोनों स्त्रियोंको रखिये। दोनोंका समान

साधनोपयोगी पत्र संख्या ३] भावसे पालन कीजिये और यथासाध्य दोनोंमें प्रेम बना आत्महत्या है। लौकिक आत्महत्यासे केवल स्थूल रहे, ऐसी चेष्टा करते रहिये। पापका स्वरूप जितना शरीरका अन्त होता है, परंतु दूसरे प्रकारकी जो आत्महत्या है, वह जीवको अनन्तकालतक जन्म-मृत्यु छोटा हो, उतना ही अच्छा है। साथ ही-कातर भावसे भगवान्से प्रार्थना कीजिये। यदि उस विधवा बहनके एवं नरक-यन्त्रणाके चक्करमें डाले रखती है। तथा आपके मनमें अब भी पवित्र भाव आ जाय और (२) ऊपर जिसे लौकिक आत्महत्या कहा है, आपलोग शारीरिक सम्बन्धका त्याग कर दें तो पाप और उसमें और शरीरहत्यामें कोई अन्तर नहीं है। भी घट जायगा। भगवान्की विश्वासपूर्वक की हुई (३) किसीके अस्तित्वको रखना या न रखना यह प्रार्थनासे ऐसा होना असम्भव नहीं है। शेष भगवत्कृपा। ईश्वरके अधीन है। जिसने अस्तित्व दिया है, वही उस (3) वस्तुके अस्तित्वको मिटा सकता है। स्पष्ट शब्दोंमें यों दो प्रकारकी आत्महत्या समझना चाहिये, जो जन्म या जीवन दे सकता है, वही मारनेका भी अधिकार रखता है। जो किसीको जिला प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला। धन्यवाद। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है— नहीं सकता, वह किसीको मारनेका भी अधिकारी नहीं (१) 'आत्महत्या' दो प्रकारकी होती है-एक है। हमारा शरीर हमारे कर्मानुसार भगवान्ने हमको दिया लौकिक, एक पारमार्थिक। विष खाकर, आगमें जलकर, है, अतः वे ही जब चाहें, ले सकते हैं। यदि हम उसे भार मानकर अपनी ओरसे मिटानेका यत्न करते हैं तो पानीमें डूबकर या किसी अस्त्र-शस्त्रका अपने ही ऊपर पापके भागी होते हैं। प्रहार करके जो अपने शरीर एवं जीवनको जान-बुझकर (४) देशभक्ति भी एक धर्म है। वह धर्मसे भिन्न नष्ट कर दिया है, उसका नाम लौकिक आत्महत्या है। इसका परिणाम लोक-परलोक दोनोंमें बडा भयंकर होता नहीं है। अधर्मसे देशभक्ति नहीं हो सकती। देश-भक्तिका साधन भी धर्म ही है। आजके जगत्में धर्मकी है। मनुष्य जिस क्षणिक दु:ख, शोक या मनस्तापसे मुक्त अपेक्षा देशभक्तिको महत्त्व दिया जाता है, ऐसा नहीं होनेके लिये आत्महत्या करता है, वह अनन्तगुणा होकर मानना चाहिये। धर्म छोड़नेसे देशभक्तिका होना सम्भव अनन्त कालतक उसे परलोकमें कष्टदायक होता है। नहीं है। जिसका नैतिक चरित्र गिरा हुआ है, वह सच्चा आत्महत्यासे केवल स्थूल शरीरका नाश होता है। सूक्ष्म देशभक्त नहीं है, वह देशभक्तिका ढोंग करता है, वह शरीर तो रहता ही है, उसीके द्वारा वास्तवमें सुख-दु:खका अनुभव करता है। और जो मानव-शरीर पाकर अपनी आचारहीनताके द्वारा देशको रसातलकी ओर ले भी ज्ञान या भक्तिका साधन नहीं करता—अपनेको इस जानेवाला है। देशभक्तकी सच्ची कसौटी यह है कि उसका चरित्र बहुत ऊँचा हो। जो लोग देशभिकका ढोंग संसार-बन्धनसे मुक्त करनेके लिये बताये हुए शास्त्रीय प्रयत्नोंकी ओरसे जीवनभर उदासीन रहता है, वह भी करनेवाले किसी दुराचारीको महत्त्व देते हैं, वे देशभक्तिके पवित्र आदर्शको जानते ही नहीं हैं। शेष भगवत्कृपा। आत्महत्या ही करता है। यह पारमार्थिक दृष्टिसे सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया । जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः॥ एतावान् मनुष्य-जन्मका यही—इतना ही लाभ है कि चाहे जैसे हो—ज्ञानसे, भक्तिसे अथवा अपने धर्मकी निष्ठासे जीवनको ऐसा बना लिया जाय कि मृत्युके समय भगवान्की स्मृति अवश्य बनी रहे। (श्रीमद्भा० २। १। ६)

कृपानुभूति 'को कृपाल संकर सरिस' मेरी एवं मेरे परिवारकी भगवान् शंकरमें पूरी मन्दिरका मलबा मेरे सामने पड़ा था। मेरी चिन्ता आस्था एवं निष्ठा है। मेरे दिनकी शुरुआत शिवको बढ़ गयी कि पत्नीका क्या हुआ? मैं मन-ही-मन जलाभिषेकसे होती है। मेरा यह मानना है कि ईश्वरीय ईश्वरीय सत्ताको याद कर रहा था। **'ॐ नम:** शिवाय' का जप अनवरत चल रहा था। आँखोंमें

सत्तामें जिसे पूर्ण विश्वास हो, भला उसका कोई क्या बिगाड सकता है। इसी भावबोधकी एक घटना, जो मेरे आँसू थे। बार-बार आवाजें लगानेपर भी कोई जवाब साथ घटी, वह इस प्रकार है-नहीं मिल रहा था। मेरा जप अनवरत चल रहा था। मैं २५ जनवरी २००१ ई० को पंजाब नेशनल उसी समय हर्ष और आश्चर्यमिश्रित घटना घटी, बैंककी गांधीधाम (कच्छ, गुजरात) शाखासे वरिष्ठ प्रबन्धकके पदसे सेवानिवृत्त हुआ। सदैवकी भाँति हम पति-पत्नी अगले दिन २६ जनवरीको शिव-दर्शन एवं जलाभिषेकके लिये मन्दिर गये। भगवान् शंकरको अभी

जलाभिषेक शुरू ही किया था कि पृथ्वीमें कम्पन होने लगा एवं गड़गड़ाहटकी तेज आवाजके साथ मन्दिर हिलने लगा। मन्दिर-परिसरमें ही एक तरफ भगवती अम्बाका मन्दिर, दूसरी तरफ रामदरबार एवं तीसरी तरफ शिव-परिवार विराजित था। मैंने धर्मपत्नीको बाहर लानेके लिये उनका हाथ पकड़ा, परन्तु भूकम्पकी तीव्रताकी वजहसे हाथ छूट गया। भूकम्पने विकराल रूप ले लिया था। मैं यह सोचते हुए कि पत्नी मेरे पीछे-पीछे आ रही है, तेज दौडकर मन्दिरसे बाहर निकला। आश्चर्य, मेरे बाहर निकलते ही मन्दिरका प्रमुख गुम्बद,

जिसके नीचे मैं अभी-अभी खड़ा था, जमीनपर आ

गिरा। पूरा मन्दिर खण्डहरमें बदल चुका था। मन्दिरसे बाहर निकलनेके सारे रास्ते उस मलबेने बन्द कर दिये।

उस समय मन्दिरमें हम दो ही थे। मन्दिरके बाहर चारों

तरफ हाहाकार और 'बचाओ-बचाओ' का करुण क्रन्दन

सुनायी दे रहा था। अनेक बहुमंजिली इमारतें मेरी

आँखोंके सामने धूल-धूसरित होती दिखायी दे रही थीं।

एक ही पलमें हँसी चीत्कारोंमें बदल चुकी थी। यमराजरूपी उस प्रलंयकारी भूकम्पने कुछ ही क्षणोंमें

हजारों जानें लील ली थीं। विनाशके बाद ही उस

करीब पन्द्रह मिनट के अन्तरालके बाद पत्नीको मन्दिरके पिछवाड़ेसे आते देखा। आँखोंपर सहसा विश्वास नहीं हुआ। उसके मुँहसे शब्द नहीं निकल रहे थे। उसके चेहरेपर भय और विषादकी लकीरें साफ दिखायी दे रही थीं। आँखें आँसुओंसे आप्लावित थीं। कुछ शान्त होनेके बाद उसने बताया कि मेरा हाथ छूटनेके बाद वह शिवलिंगका सहारा लेकर बैठ गयी और प्राणरक्षाहेतु भगवान् शंकरसे आर्तनाद करने लगी। पूरा मन्दिर जो एक विशाल चबूतरेपर ८-१० फुटकी ऊँचाईपर स्थित था, मलबा बन चुका था। भगवान् आशुतोषकी कृपासे शिव-परिवारका मन्दिर इस तरह ट्रटा कि पत्नीकी देहपर एक खरोंचतक नहीं आयी एवं ८-१० फुट नीचे कृदकर उसने अपनी जान बचायी। ईश्वरीय अनुकम्पा देखिये कि अगर मैं बाहर निकलनेमें कुछ क्षणोंकी भी देरी करता तो उस विशाल गुम्बदकी चपेटमें आकर मृत्युको वरण कर चुका होता और यदि मेरी पत्नी मेरे पीछे-पीछे आती तो गुम्बदकी चपेटमें आकर उसकी मृत्यु निश्चित थी। भगवान् शंकरको कोटि-कोटि नमन, जिन्होंने इस प्रलंयकारी भूकम्पसे हम दोनोंके जीवनकी रक्षा की। भगवान्

िभाग ९४

शंकरके समान भला कौन कृपालु हो सकता है। इस घटनासे मेरे निम्नलिखित मतको और अधिक पुष्टि मिली— जरत सकल सुरबृंद बिषम गरल जेहिं पान किय। तेहि न भजिस मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥ प्रलंगकारी भक्तप्परूपी दानवकी भख्न शान हुई थी/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash सेनी

पढो, समझो और करो संख्या ३] पढ़ो, समझो और करो (१) भाग-दौडकी जिन्दगीमें किसीको बात करनेकी भी फुरसत नहीं मिलती। मैं तो रोज देखता हूँ, रास्ते सुनसान सकारात्मक सोच नहीं रहते। भीड़भरे रास्तोंमें कई बार वाहनोंकी रेलमपेलमें रामधनको कौन नहीं जानता। रिक्शा चलाते हुए बीस बरस हो गये। शहरका बच्चा-बच्चा रामधनको सर-दुर्घटनाका खतरा बना रहता है। यह तो बरसों रिक्शा आँखोंपर बिठाता है। वह बच्चोंका प्यारा-दुलारा जो है। चलाते-चलाते मेरा हाथ साफ हो गया है, नहीं तो रोज यदि कोई बच्चा बीमार हो गया हो, स्कूलकी बस छूट ही एक्सीडेंटका खतरा बना रहता है।' बातचीत चल ही गयी हो, कभी बच्चोंमें परस्पर झगडा हो गया हो, घरमें रही थी कि सामनेसे एक टैक्सीवाला तेज गतिसे गलत अकेला रह गया हो, बच्चेको अस्पताल ले जाना हो, साइडसे आ रहा था। उसकी टैक्सीका पिछला भाग मेरे बस्तेका वजन ज्यादा हो तो रामधनको बुला लो। वह रिक्शेसे टकराते-टकराते बचा। टैक्सीवाला रुका तब सदैव तैयार मिलेगा। बशर्ते कि वह किसी सवारीको कहीं रामधनने कहा, 'भैया! गलत साइड मत चला करो', ले नहीं जा रहा हो। यदि आपको उसे बुलाना है तो किन्तु वह नौजवान अपनी गलती नहीं मानते हुए कहने आपके पास उसके फोन नम्बर जरूर होंगे। यदि न भी लगा—'तुम्हें दिखाई नहीं दे रहा था कि मैं सामनेसे आ हो तो चिन्ताकी कोई बात नहीं। राह चलते किसी भी रहा हूँ। बेवकूफ कहींके। रिक्शा चलाना नहीं आता तो आदमीसे, किसी मजदूरसे, दुकानदारसे, नौकरी पेशावालेसे क्यों चलाते हो', और क्रोधित होकर गालियोंकी बरसात या ठेलावाले—िकसीसे भी उसका नम्बर पूछ लो, बता करने लगा। रामधन कुछ नहीं बोला, मुसकराता रहा, देगा। आदमी कामवाला है ना। बुलानेपर तत्काल पहुँच कहने लगा—'भैयाजी! गलती हो गयी। माफ करना। जाता है रिक्शा लेकर आपके पास। यदि आपको रेलवे मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।' स्टेशनपर जानेकी जल्दी हो, बस पकड़नी हो, बैंकमें 'चोरी और सीना जोरी' वाली कहावतको चरितार्थ होते देखकर मैंने रामधनसे कहा—'भैया! गलती उसकी जानेको साधन नहीं हो तो रामधनकी सेवाएँ प्रस्तृत हैं। उस दिन सोनी अस्पतालमें एक महिला रोगीको थी, गलत साइडसे वह आ रहा था और सटकर खूनकी जरूरत थी। मुझे खून देना था। जानेका साधन निकलना क्या उसकी गलती नहीं थी। तुम तो रामधन रातके ग्यारह बजे भला कैसे सम्भव है। तत्काल बहुत सीधे हो। उसकी गालियाँ सुनते रहे और क्षमा रामधनको फोन किया तो उत्तर मिला, 'बाबूजी! माँगते रहे। ऐसा क्यों? ईंटका जवाब पत्थरसे देना रोडवेजवाले चौराहेपर हूँ। अभी आया, जल्दी हो तो चाहिये था।' आप चौराहेकी ओर आइये और मैं इधरसे प्रस्थान कर 'बाबूजी! दुनियामें बहुतसे लोग स्वच्छ भारत रहा हूँ। आप निश्चिन्त रहिये, दस मिनट भी नहीं लगेंगे मिशनके कूड़ा-कचरेसे भरे ट्रककी तरह होते हैं। वे अस्पताल पहुँचनेमें।' लोग बहुत सारा कूड़ा अपने दिमागमें भरकर चलते हैं। देखते-ही-देखते रामधनका रिक्शा आँख झपकते जिन चीजोंकी जीवनमें आवश्यकता ही नहीं होती, उन्हें ही सामने आ खड़ा हुआ और चल दिया अस्पतालकी भी वे ढोते रहते हैं, जैसे क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, तनाव, ओर। रामधन सभी आवश्यक स्थानोंका पूरा रास्ता निराशा, चिन्ता, अहंकार आदि उनके दिमागमें कूड़ेकी जानता है। खुशमिजाज रामधन पूछने लगा। तरह भरा रहता है और जब यह कूड़ा अधिक हो जाता 'बाबूजी! घरपर सब ठीक-ठाक तो है ना! इस है, तो वे अपना बोझ कम करनेके लिये दूसरोंपर

भाग ९४ फेंकनेका अवसर ढूँढ़ते रहते हैं, इसलिये मैं ऐसे लोगोंसे सवारी मिलती थी। अशोकनगरसे ४०कि०मी० तकका दूरी बनाये रखता हूँ; क्योंकि उनके द्वारा गिराया गया पैदल रास्ता पार करके घर पहुँचना होता था। बारिश समाप्त होनेके पश्चात् ही कच्चे रास्तोंपर अपनी सवारी कूड़ा मैंने स्वीकार कर लिया तो मैं भी स्वच्छता ट्रैक्टर, बैलगाडी आदि चल पाती थी। पिताजीके मिशनवाला कूड़ेका ट्रक बन जाऊँगा। स्वच्छ भारत मिशनको तरह मानसिक सफाई अभियान आवश्यक है, कहनेपर मैं अशोकनगरसे अपने गाँवतक पैदल चलकर ताकि लोगोंके मन-मस्तिष्कसे कूड़ा हट सके और अपने घर पहुँचा। वहाँसे खेतीके लिये डीजल लेनेके लिये पास-पड़ोसके लोगोंपर वह कूड़ा गिरता न रहे। मेरी चला एवं २०० लीटरका ड्रम ट्रैक्टरपर बाँधकर हम पिताजीको लेने अशोकनगर अपने मकानपर पहुँचे। सोच है कि यह जिन्दगी बड़ी खूबसूरत है, अत: जो हमसे अच्छा व्यवहार करते हैं, उन्हें धन्यवाद कहो और रात्रि विश्राम किया, सारे दिन अशोकनगरमें खेतीके लिये डीजल, और घरके लिये किरानेका सामान खरीदा, जो अच्छा व्यवहार नहीं करते, उन्हें मुसकराकर माफ कर दो। बाबू साहब! सभी रोगी अस्पतालमें नहीं होते, फिर शाम हो गयी तो अशोकनगरमें ही रात्रिविश्राम कुछ मानसिक रोगी हमारे इर्द-गिर्द खुलेमें घूमते रहते करके सुबह सब सामान बाँधकर ट्रैक्टरपर रखकर हैं। आप जानते हैं यदि खेतमें बीज नहीं डाला जाय तो घरको चले। मेरे साथ पिताजी, मेरी धर्मपत्नी, दोनों प्रकृति उसे घास-फूससे भर देती है। इसी तरह यदि बच्चे, ड्राइवर और एक हेल्पर था। रास्तेमें मुझे मस्तिष्कमें सकारात्मक विचार नहीं भरे जायँ तो नकारात्मक ठण्ड देकर मलेरिया बुखार हो आया। मुझे बेचैनी-सी हो गयी। मेरे हाथमें एक बैग था, जिसमें मेरी विचार उनकी जगह बना लेंगे। यह सही है कि जिसके पास जो होता है, वही तो बाँटता है। ज्ञानी ज्ञान बाँटता धर्मपत्नीकी करीबन दो-ढाई तोलेकी सोनेकी चैन, दो है और भ्रमित भ्रम बाँटता है। अँगूठी, पाँवकी पायजेब दो जोड़, एक सोनेकी गोल, इसीलिये मैं सकारात्मक सोचके साथ गलती मकानकी रजिस्ट्रीके कागजात, मेरे परिवारके फोटोका सामनेवालेकी होनेपर भी मुसकराकर क्षमा माँगनेमें एलबम, बारह बोर बन्दुकका लायसेन्सका कागज, अपना हित समझता हूँ। पिताजीके नामका ३१५ बोरका लायसेन्सका कागज रामधनकी यह सकारात्मक सोच मुझे जीवनकी रखा था। उसी बैगमें मेरा पर्स भी था, उसमें कुछ बहुत बड़ी सीख दे गयी, जो हर मानवके लिये हितकर पैसे भी थे। मेरा छोटा भाई जो मुझसे लगभग दस साल छोटा है, वह भी साथ था। वह अशोकनगरमें है।—शंकरलाल माहेश्वरी रहकर कक्षा ९ की पढ़ाई कर रहा था। उसी बैगमें (२) ईमानदारी आज भी जिन्दा है उसका स्कूलका परिचय-पत्र था, जो बैगके साथ घटना सन् १९८९ ई०के अक्टूबर माहकी है। ट्रैक्टरसे कहीं टपककर गिर गया। जब घर आकर में जिला गुना-म० प्र० का निवासी हूँ। मेरे पिताजीका हमने सामान ट्रैक्टरसे उतारकर घरपर रखा तो वह इलाज चल रहा था। उनकी तिबयत चार माहसे बैग कहीं नजर नहीं आया। मैंने अपनी पत्नीसे पूछा खराब थी। मैं अपने वर्तमान मकान अशोकनगरमें तो उसने कहा, आपके ही पास था। अब तो सब रहकर उनका इलाज करा रहा था। शारदीय नवरात्रका सकते में आ गये। इतना सामान, जरूरी कागजात, समय था। पिताजी कहने लगे कि 'अब घर चलो। अब क्या हो? कैसे पता चले? पर कुछ दिन बाद खेतीका समय आ गया।' उस समय सड़कें थीं ही भैंसरवास तहसील अशोकनगरका जो वर्तमानमें

आज जिला है, वहाँका एक आदमी हाथमें बाबू

नहीं, पैदल चलना पड़ता था, अथवा ऊँट-घोड़ेकी

मनन करने योग्य

गुरुकी अवहेलनाका दुष्परिणाम

उसीपर दे मारा। उस शिलाखण्डके प्रहारसे वह मन-एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण गोपबालकोंके साथ वनमें गोचारण कर रहे थे। सहसा गोपबालकोंके ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा। उसने अपने सींगोंके

बीचमें कंसद्वारा प्रेषित महाबली दैत्य अरिष्टासुर आया।

उसकी आकृति पर्वताकार साँड-जैसी थी। वह अपने

सिंहनादसे पृथ्वी और आकाशको गुँजा रहा था और

सींगोंसे पर्वतीय तटोंको विदीर्ण कर रहा था। उसे

देखते ही गोपियाँ, गोप तथा गौओंके समुदाय भयसे

इधर-उधर भागने लगे। दैत्योंके नाशक भगवान्



श्रीकृष्णने उन सबको अभय देते हुए कहा—'डरो मत।' माधवने उसके सींग पकड लिये और उसे पीछे ढकेल दिया। उस राक्षसने भी श्रीकृष्णको ढकेलकर

दो योजन पीछे कर दिया। तब श्रीकृष्णने उसकी पुँछ पकड़ ली और बाहुवेगसे घुमाते हुए उसे उसी प्रकार

पृथ्वीपर पटक दिया, जैसे छोटा बालक कमण्डलुको

फेंक दे। अरिष्ट फिर उठा। क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो रहे थे। उस महादुष्ट वीरने सींगोंसे लाल पत्थर

उखाड़कर मेघकी भाँति गर्जना करते हुए श्रीकृष्णके ऊपर फेंका। श्रीकृष्णने उस प्रस्तरको पकड़कर उलटे

अग्रभागसे पृथ्वीपर प्रहार करना आरम्भ किया, इससे पृथ्वीके भीतरसे पानी निकल आया। तब श्रीकृष्णने

उसके सींग पकड़कर बार-बार घुमाते हुए उसे पृथ्वीपर उसी प्रकार दे मारा, जैसे हवा कमलको उठाकर फेंक

देती है, जिससे उसके प्राण-पखेरू उड गये। उसी समय वह वृषभका रूप त्यागकर ब्राह्मणशरीरधारी हो गया और श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें प्रणाम करके

भक्तिसे गद्गद वाणीमें बोला—हे भगवन्! मैं बृहस्पतिका शिष्य द्विजश्रेष्ठ वरतन्तु हूँ। मैं बृहस्पतिजीके समीप पढ़ने गया था। उस समय उनकी ओर पाँव फैलाकर उनके सामने बैठ गया था। इससे वे मुनि रोषपूर्वक

बोले—'तू मेरे आगे बैलकी भाँति बैठा है, इससे गुरुकी अवहेलना हुई है; अत: दुर्बुद्धे! तू बैल हो जा।' माधव! उस शापसे मैं वंगदेशमें बैल हो गया।

अब आपके प्रसादसे मैं शाप और असुरभावसे मुक्त हो गया। आप श्रीकृष्णको नमस्कार है। आप भगवान् वासुदेवको प्रणाम है। प्रणतजनोंके क्लेशका नाश करनेवाले आप गोविन्ददेवको बारंबार नमस्कार है।

साक्षात् शिष्य वरतन्तु भुवनको प्रकाशित करते हुए विमानसे दिव्यलोकको चले गये।

इस प्रकार इस पौराणिक घटनासे यह बोध होता है कि अपने गुरुजनोंके प्रति व्यक्तिको आदरका भाव

रखना चाहिये तथा उनके प्रति शिष्ट व्यवहार करना चाहिये, अन्यथा इसके दु:खद परिणाम होते हैं। [गर्गसंहिता]

असुरोंके संगमें रहनेसे मुझमें असुरभाव आ गया था।

यों कहकर श्रीहरिको नमस्कार करके बृहस्पतिके

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

Saintly Readers,

This year Kalyana-Kalpataru proposes to publish Upāsanā Special Issue in October 2020 as its Annual Number.

Upāsanā literally means to make the mind sit close to God. There are mainly two practical ways when state of mind evolves, the idea of God penetrates every pore of the body, either through the discipline of devotion that the devotee feels oneness with God through intense devotion or through the discipline of Knowledge, discarding the identification with the body, the self merges in God Himself. So either way our lives get sublimated. I hope this issue will benefit all of us.

Therefore, I solicit you to send us writes-up before 30th, June 2020. The writes-up should be concise and lucid in typed forms. Topics are suggested below or any related matters.

Upāsanā Number

1. Stages of Upāsanā 2. What is the meaning of Upāsanā? 3. Rightful person for Upāsanā 4. The Mantras of Upāsanā 5. Upāsanā for betterment of beings 6. Devotional Spirit 7. Vaidika mystery of Upāsanā 8. Essence of Upāsanā 9. Psychological teaching of Upāsanā 10. Upāsanā according to scriptures 11. Upāsanā to attain God-realization 12. Mystery of syllable 13. Upāsanā in Upanisads 14. Different kind of Upāsanā—(a) Gāyatrī Upāsanā (b) Gītā Upāsanā (c) Devopāsanā (d) Sūryopāsanā (e) Śrī Rāma Upāsanā (f) Hanumat Upāsanā (g) Śrī Krsna Upāsanā (h) Śakti Upāsanā (i) Śivopāsanā (j) Jyotisopāsanā (k) Navagraha Upāsanā(l) Saguna and Nirguna Upāsanā (m) Mantra Upāsanā (n) Visnu Upāsanā (o) Ganeśa Upāsanā (p) Sarasvatī Upāsanā (q) Laksmī Upāsanā (r) Pañcadevopāsanā 15. Upāsanā of Śabarī 16. Use of Magical formulae in Upāsanā 17. Impact of prescribed flowers used in Upāsanā 18. Foremost Upāsanā—Nāmopāsanā 19. Annihilation of various impediments by true Upāsanā 20. Worship of worshipped 21. Upāsanā in Vaisnava Sect 22. All-round effect of Upāsanā 23. Upāsanā in Nimbārka Sect 24. Awakefulness of Ātmā through Upāsanā 25. Upāsanā by all limbs 26. Upāsanā in Śākta Sect 27. Why effect of Upāsanā or Sādhanā not visioned immediately? 28. Different Upāsanā—a comparative viewpoints 29. Upāsanā of Uddhava, Gopikās, Sūradāsa, Mīrābāī, and Tulasīdāsa 30. Upāsanā in Rāmacaritamānasa 31. Upāsanā in different religions—(a) Jain (b) Bauddha (c) Islam (d) Christianity (e) Zoroastrian 32. Kinds of Upāsanā 33. Characteristics of Upāsanā 34. Obstacles in Upāsanā

—Editor

Send articles at the following address-

Editor—Kalyana-Kalpataru, P. O. Gita Press, Gorakhpur—273005 (U. P.)

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

- १- प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर, २-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक
- ३-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये), राष्ट्रगत सम्बन्ध— भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
- ४-सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका, राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
- ५-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं:—गोबिन्दभवन-कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकृत)।

मैं केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन–कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

केशोराम अग्रवाल (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये)—प्रकाशक



LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना



गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें ग्रीष्मकालमें सत्संगका लाभ श्रद्धालु एवं आत्मकल्याण चाहनेवाले साधकोंको प्रारम्भसे ही प्राप्त होता रहा है। पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी चैत्र शुक्ल द्वादशी (५ अप्रैल)-से सत्संगका विशेष आयोजन प्रारम्भ किया जायगा, जो लगभग तीन मासतक चलेगा। इस अवसरपर संत-महात्मा एवं विद्वद्गणोंके पधारनेकी बात है। गीताभवनमें चैत्र एवं आश्विन नवरात्रमें श्रीरामचरितमानसका सामृहिक नवाह्न-पाठका

कार्यक्रम रहता है। गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको अवश्य उठाना चाहिये।

पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी द्विजातियोंका सामूहिक यज्ञोपवीत-संस्कार दिनांक २७ मई (ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी)-को होना निश्चित हुआ है, जिसकी पूजा २६ मईको प्रारम्भ हो जायगी। इच्छुक जनोंको २५ मईतक गीताभवन पहुँच जाना चाहिये।

गीताभवनमें संयमित साधक-जीवन व्यतीत करते हुए सत्संग-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ आवास, भोजन, राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है।

महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने आदि जोखिमकी वस्तुओंको, जहाँतक सम्भव हो, नहीं लाना चाहिये।

सत्संगमें आनेवाले साधकोंको आधार कार्ड अथवा फोटोयुक्त अन्य पहचान-पत्र रखना आवश्यक है।

व्यवस्थापक — गीताभवन, पो०-स्वर्गाश्रम — २४९३०४

श्रीराधा-माधव अङ्क अब ग्रन्थरूपमें उपलब्ध

सुहृद् पाठकों—श्रद्धालु भक्तोंको श्रीराधा-माधवकी मधुरातिमधुर लीलाओंका दर्शन कराने-हेतु जनवरी 2019 के विशेषांकरूपमें श्रीराधा-माधव अङ्कका प्रकाशन किया गया था, इसमें मुख्य रूपसे श्रीराधा-माधवकी उपासनाके विविधरूप, श्यामसुन्दर एवं राधारानीकी अन्तरंग तथा बाह्यलीलाओंके सहचर, भक्तवृन्दोंकी रोचक कथाओंकी प्राथमिकता है जो साधकों तथा आस्तिकजनोंके लिये परम मंगलमय एवं हितकारी है। अब यह विशेषांक बिना मासिक अंकोंके अलगसे ग्रन्थरूपमें उपलब्ध है। (कोड 2235) मूल्य ₹ १४०। आप स्वयं मँगवाना चाहते हों अथवा किसी आत्मीयजनको रजिस्ट्रीसे भेजना चाहते हों तो डाकखर्च ₹ ५० नहीं लगेगा।

श्रीमद्भागवतकथा आदि शुभ अवसरोंपर प्रसादरूप वितरित करनेवालोंके लिये विशेष छूट उपलब्ध है। विशेष छूट पानेके लिये मो०नं० 8545857113, 7985282936, 998488988 पर सम्पर्क करना चाहिये।

- booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
- gitapress.orgसूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005 book.gitapress.org gitapressbookshop.in